'अपने कल्याणका, आध्यात्मिक उन्नतिका जैसा मौका भारतमें है, वैसा अन्य किसी देशमें नहीं है। कल्याण (मुक्ति)-का आविष्कार इस देशमें विशेषतासे हुआ है। जैसे वैज्ञानिक नित्य नये-नये भौतिक आविष्कार कर रहे हैं, ऐसे ही इस देशमें हम नये-नये आध्यात्मिक आविष्कार कर सकते हैं।'

'जैसे भौतिक जगत्‌में नित्य नये-नये आविष्कार होते रहते हैं, ऐसे ही मैं चाहता हूँ कि आध्यात्मिक जगत्‌में भी नये-नये आविष्कार हों, और ऐसा होना सम्भव भी है; क्योंकि परमात्मप्राप्तिके कई उपाय अभी शेष पड़े हैं, प्रकट नहीं हुए हैं। यदि कोई नया आविष्कार हो जाय तो उसमें हर्जा क्या है? हमारी शैली बिल्कुल नया आविष्कार है!'

'मनुष्यका जल्दी-से-जल्दी और सुगमतापूर्वक कल्याण हो जाय—ऐसे उपायोंकी खोजमें मैं बचपनसे ही लगा हुआ हूँ। मुझे अब भी नयी-नयी विलक्षण बातें मिलती हैं। परन्तु आपलोगोंका इस तरफ विचार ही नहीं है, उल्टे जिससे पतन हो जाय, ऐसे कामोंमें आप लगे हुए हैं!'

'इसी पुस्तक से'

गीता प्रकाशन, गोरखपुरका अमूल्य साहित्य प्राप्त करें -

कसौधन पंचायत मन्दिर

हरिवंश गली, शेषपुर, गोरखपुर-273005

सम्पर्क सूत्र : 9389593845, 7668312429

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

लक्ष्य अब दूर नहीं !

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके

वचनोंका सार-संग्रह

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

लक्ष्य अब दूर नहीं!

(भगवत्प्राप्तिके विविध सुगम उपाय)

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके वचनोंसे संगृहीत]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

संकलनकर्ता—राजेन्द्र कुमार धवन

गीता प्रकाशन, गोरखपुर

प्रकाशक—
गीता प्रकाशन
गीता सत्संग मण्डल
पो० गीताप्रेस, गोरखपुर -२७३००५ (उ०प्र०)
सम्पर्क सूत्र - 09389593845, 07668312429
E-mail : please contact us -
radhagovind10@gmail.com, pbramhachari@gmail.com
visit us at : www.gitaprakashan.org

प्रथम संस्करण सं० २०६८ (१०००० प्रतियाँ)
मूल्य रु० १०.०० (दस) मात्र

पुस्तक प्राप्ति स्थान :

1- गीता प्रकाशन
गीता सत्संग मण्डल
कसौधन पंचायती मंदिर (हरिवंश गली)
पोस्ट-गीताप्रेस, गोरखपुर-273005
मो.-07668312429

2- श्रीराम सेवा आश्रम
केशव नगर, छठीकरा रोड
श्री वृन्दावन (मथुरा)
मो.-09410616466

3- श्रीहरि पुस्तक प्रचार सदन
42, विवेकानन्द रोड,
गिरीश पार्क के पास,
कोलकाता-700006
मो.-0983066729, 09824426477

4- राधारानी पुस्तक केन्द्र
695, माया बाजार, पश्चिम फाटक
गोरखपुर - 273001
मो.-09389593889, 07668312429

5- गोरखपुर धार्मिक पुस्तक सदन
B/8, गिन्नी अपार्टमेण्ट, भादरमल रुइया मार्ग
निकट रेलवे क्रासिंग, मलाड (ईस्ट) मुम्बई
मो. - 09833753470
फोन - 022-28784465

6- कैप्टन रिटायर्ड श्रीभगवान सिंह जोधा
असल दुर्ग, 203 गिरनार कालोनी
गाँधीपथ, वैशालीनगर, जयपुर-302021
मो.-09928849500
E-mail : asaidurg1@gmail.com

7- सत्संग समिति
शाप नं. 41, सी.एल. शर्मा काम्पलेक्स
प्लाट नं. 130, सेक्टर-8
नियर-आसलो सिनेमा, गाँधीधाम (कच्छ)-370201

8- सहज गीता पाठ समिति
483, अग्रवाल कालोनी, हिसार - 125001
(हरियाणा)
मो.-09215625079

मुद्रक :
कमल आफसेट प्रिन्टर्स
दुर्गाबाड़ी रोड, गोरखपुर (उ.प्र.)
मो. - 09415331881

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

विषय-सूची

प्रार्थना

हे नाथ ! आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे प्यारे लगें। केवल यही मेरी माँग है और कोई माँग नहीं।

हे नाथ ! अगर मैं स्वर्ग चाहूँ तो मुझे नरकमें डाल दें, सुख चाहूँ तो अनन्त दुःखोंमें डाल दें, पर आप मुझे प्यारे लगें।

हे नाथ ! आपके बिना मैं रह न सकूँ, ऐसी व्याकुलता आप दे दें।

हे नाथ ! आप मेरे हृदयमें ऐसी आग लगा दें कि आपकी प्रीतिके बिना मैं जी न सकूँ।

हे नाथ ! आपके बिना मेरा कौन है ? मैं किससे कहूँ और सुने ? हे मेरे शरण्य! मैं कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? कोई मेरा नहीं।

मैं भूला हुआ कइयोंको अपना मानता रहा। उनसे धोखा खाया, फिर भी धोखा खा सकता हूँ, आप बचायें!

हे मेरे प्यारे ! हे अनाथनाथ ! हे अशरणशरण ! हे पतितपावन ! हे दीनबन्धो ! हे अरक्षितरक्षक ! हे आर्तत्राणपरायण ! हे निराधारके आधार ! हे अकारणकरुणालय ! हे साधनहीनके एकमात्र साधन ! हे असहायके सहायक ! क्या आप मेरेको जानते नहीं, मैं कैसा भग्नप्रतिज्ञ, कैसा कृतघ्न, कैसा अपराधी, कैसा विपरीतगामी, कैसा अकरणकरणपरायण हूँ। अनन्त दुःखोंके कारणस्वरूप भोगोंको भोगकर-जानकर भी आसक्त रहनेवाला, अहितको हितकर माननेवाला, बार-बार ठोकरें खाकर भी नहीं चेतनेवाला, आपसे विमुख होकर बार-बार दुःख पानेवाला, चेतकर भी न चेतनेवाला, जानकर भी न जाननेवाला मेरे सिवाय आपको ऐसा कौन मिलेगा?

प्रभो ! त्राहि माम् ! त्राहि माम् !! पाहि माम् ! पाहि माम् !! हे प्रभो! हे विभो ! मैं आँख पसारकर देखता हूँ तो मन-बुद्धि-प्राण-इन्द्रियाँ और शरीर भी मेरे नहीं हैं, फिर वस्तु-व्यक्ति आदि मेरे कैसे हो सकते हैं ! ऐसा मैं जानता हूँ, कहता हूँ पर वास्तविकतासे नहीं मानता। मेरी यह दशा क्या आपसे किंचिन्मात्र भी कभी छिपी है? फिर हे प्यारे ! क्या कहूँ ! हे नाथ ! हे नाथ !! हे मेरे नाथ !!! हे दीनबन्धो ! हे प्रभो ! आप अपनी तरफसे शरणमें ले लें। बस, केवल आप प्यारे लगें।

(परम श्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा लिखित)

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज रात-दिन ऐसे उपायोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनके द्वारा प्रत्येक कल्याणकामी मनुष्य शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतासे अपना कल्याण कर सके, परमात्माको प्राप्त कर सके। उन्होंने अपने प्रवचनोंमें अनेक बार यह बात कही कि अगर मेरा शरीर कुछ वर्ष और रह गया तो मैं भगवत्प्राप्ति और सुगम बता दूँगा! कारण कि उनके जीवनका एक ही विषय था कि मनुष्यमात्रका कल्याण कैसे हो? इस विषयमें उन्होंने अनेक क्रान्तिकारी उपायोंकी खोज की और उन्हें अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे साधकोंतक पहुँचाया। उन्हींके शब्दोंमें—

'अपने कल्याणका, आध्यात्मिक उन्नतिका जैसा मौका भारतमें है, वैसा अन्य किसी देशमें नहीं है। कल्याण (मुक्ति)-का आविष्कार इस देशमें विशेषतासे हुआ है। जैसे वैज्ञानिक नित्य नये-नये भौतिक आविष्कार कर रहे हैं, ऐसे ही इस देशमें हम नये-नये आध्यात्मिक आविष्कार कर सकते हैं।'

'जैसे भौतिक जगत्‌में नित्य नये-नये आविष्कार होते रहते हैं, ऐसे ही मैं चाहता हूँ कि आध्यात्मिक जगत्‌में भी नये-नये आविष्कार हों, और ऐसा होना सम्भव भी है; क्योंकि परमात्मप्राप्तिके कई उपाय अभी शेष पड़े हैं, प्रकट नहीं हुए हैं। यदि कोई नया आविष्कार हो जाय तो उसमें हर्जा क्या है? हमारी शैली बिल्कुल नया आविष्कार है!'

'जो तत्त्वप्राप्ति करना चाहता है, वह कैसा ही क्यों न हो, अधिकारी हो या अनधिकारी, शुद्ध अन्तःकरणवाला हो या अशुद्ध अन्तःकरणवाला, उसको तत्त्वप्राप्ति हो सकती है। अगर वह तत्त्वप्राप्ति चाहता ही नहीं, उसमें तत्त्वप्राप्तिकी लगन ही नहीं तो उसको तत्त्वप्राप्ति कराना मेरे वशकी बात नहीं!'

'मैं सबका हित चाहता हूँ, पर चाहते हुए भी कुछ कर नहीं पा रहा हूँ! इससे सिद्ध हुआ कि जबतक मनुष्य खुद अपने उद्धारके लिये तैयार नहीं होता, तबतक दूसरा उसका उद्धार करना चाहते हुए भी नहीं कर सकता। हमने इतने प्रवचन दिये, इतनी पुस्तकें लिखीं, फिर भी उनका जैसा असर होना चाहिये, वैसा नहीं दीख रहा है! इसका कारण यही है कि लोगोंमें भूख है नहीं और हमने बढ़िया भोजन परोस दिया!'

'मनुष्यका जल्दी-से-जल्दी और सुगमतापूर्वक कल्याण हो जाय—ऐसे उपायोंकी खोजमें मैं बचपनसे ही लगा हुआ हूँ। मुझे अब भी नयी-नयी विलक्षण बातें मिलती हैं। परन्तु आपलोगोंका इस तरफ विचार ही नहीं है, उल्टे जिससे पतन हो जाय, ऐसे कामोंमें आप लगे हुए हैं!'

वर्तमानमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजके आध्यात्मिक आविष्कारोंकी तरफ विश्व-समुदायकी दृष्टि भले ही नहीं गयी हो, पर श्रीस्वामीजी महाराजने क्रान्तिके जो बीज बो दिये हैं, वे अनुकूल अवसर पाकर अवश्य ही प्रस्फुटित एवं पल्लवित होकर आध्यात्मिक जगत्‌में क्रान्ति पैदा करेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

परमात्मतत्त्वको प्राप्त करनेकी करण-निरपेक्ष साधन-पद्धति परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजका विलक्षण आविष्कार है। इस आविष्कारकी विलक्षणता यह है कि इसमें परमात्मतत्त्व अथवा मोक्षकी प्राप्तिके लिये कोई श्रमसाध्य साधन नहीं बताया गया है, अपितु इस वास्तविकताको समझाया गया है कि परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति जड़ता (शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि)-के द्वारा नहीं होती, अपितु जड़ताके त्याग अर्थात् सम्बन्ध-विच्छेदसे होती है। कारण उसकी प्राप्ति सांसारिक वस्तुकी भाँति अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं है, अपितु नित्यप्राप्तकी प्राप्ति है, जो विवेक और भावसे होती है, क्रियासे नहीं। दूसरी बात, मनुष्यमात्रको उस तत्त्वकी प्राप्तिका जन्मसिद्ध अधिकार है। उसकी प्राप्तिमें कोई भी मनुष्य अनधिकारी, अयोग्य अथवा असमर्थ नहीं है। इस करण-निरपेक्ष साधन-पद्धतिको विस्तारपूर्वक समझनेके लिये पाठकोंको परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी पुस्तक **'साधन और साध्य'** का अध्ययन करना चाहिये।

प्रस्तुत पुस्तक **'लक्ष्य अब दूर नहीं!'** में परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजके द्वारा समय-समयपर बताये गये भगवत्प्राप्तिके विविध सुगम उपायोंका संक्षिप्त संकलन किया गया है, जिससे मुमुक्षु साधक अपनी रुचि, विश्वास और योग्यताके अनुसार अपने साधनका चयन करके शीघ्रातिशीघ्र एवं सुगमतापूर्वक अपने लक्ष्यको प्राप्त कर सके।

मकर-संक्रान्ति **निवेदक—**

वि० सं० २०६८ **राजेन्द्र कुमार धवन**

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

भगवत्प्राप्तिके लिये भविष्यकी अपेक्षा नहीं

एक बहुत ही मार्मिक बात है, जिसकी तरफ साधकोंका ध्यान बहुत कम है। यदि उसपर विशेष ध्यान दिया जाय तो जल्दी-से-जल्दी बहुत बड़ा लाभ हो सकता है।

साधकोंके भीतर एक गलत धारणा दृढ़तासे जमी हुई है कि जैसे संसारका कोई काम करते-करते होता है, तत्काल नहीं होता, वैसे ही अर्थात् उसी रीतिसे भगवान्‌की प्राप्ति भी साधन करते-करते होती है, तत्काल नहीं होती। ऐसी धारणा ही भगवत्प्राप्तिमें देर कर रही है। जैसे, यदि बालक माँके पीछे पड़ जाय कि मुझे तो अभी ही लड्डू दे तो लड्डू बना हुआ नहीं होनेपर माँ उसे तत्काल कैसे बनाकर दे देगी? यद्यपि माँका अपने बालकपर बड़ा स्नेह, बड़ा प्यार है; क्योंकि उसके लिये अपने बालकसे बढ़कर और कौन है? परन्तु फिर भी लड्डू बनानेमें समय तो लगेगा ही। ऐसे ही किसी स्थानपर जाना हो, किसी वस्तुका सुधार करना हो, किसी वस्तुको बदलना हो—इन सबमें समयकी अपेक्षा है। तात्पर्य यह है कि **सांसारिक वस्तुको प्राप्त करनेमें तो समय लगता है, पर भगवानको प्राप्त करनेमें समय नहीं लगता—यह एक बहुत मार्मिक बात है।**

हम सब-के-सब परमात्मरूप कल्पवृक्षकी छायामें रहते हैं। इस कल्पवृक्षकी छायामें रहते हुए यदि हम ऐसा भाव रखते हैं कि बहुत साधन करनेपर भविष्यमें कभी भगवत्प्राप्ति होगी, तो अपनी धारणाके अनुसार भगवान् भविष्यमें ही कभी मिलेंगे। यदि हम ऐसा भाव बना लें कि भगवान् तो अभी मिलेंगे, तो वे अभी ही मिल जायँगे। भगवान्‌ने स्वयं कहा है—

ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्।

(गीता ४। ११)

'जो भक्त जिस प्रकार मेरी शरण लेते हैं, मैं उन्हें उसी प्रकार आश्रय देता हूँ।'

अतएव **भगवान्‌की प्राप्तिमें भविष्य नहीं है। हमलोगोंकी भावनामें ही भविष्य है।**

इस विषयमें एक बात विशेष महत्त्वकी है कि संसारके जितने भी काम हैं, सब-के-सब बनने और बिगड़नेवाले हैं। बननेवाले काममें देर लगती है, परन्तु बने-बनाये (विद्यमान) काममें देर कैसे लग सकती है? परमात्मा भी विद्यमान हैं और हम भी विद्यमान हैं। उनके और हमारे बीच देश-काल आदिका कोई भी व्यवधान नहीं है; फिर परमात्माकी प्राप्तिमें देर क्यों लगनी चाहिये?

भगवान् सब समयमें, सब देश (स्थान)-में, सब वस्तुओंमें तथा सब प्राणियोंमें विद्यमान हैं। समय, देश, वस्तु, प्राणी आदि सब-के-सब बदलनेवाले हैं, अर्थात् निरन्तर नहीं रहते। इसके विपरीत हम (स्वयं) भी निरन्तर रहनेवाले हैं और भगवान् भी। ऐसे भगवान्‌को प्राप्त करनेके लिये हमने ऐसी धारणा बना ली है कि जब संसारका कोई साधारण काम भी शीघ्र नहीं होता, तब जो सबसे महान् हैं, उन भगवान्‌की प्राप्तिका कार्य शीघ्र कैसे हो जायगा? परन्तु वास्तवमें सबसे ऊँची वस्तु सबसे सहज-सुलभ भी होती है। भगवान् सबके लिये हैं और सबको प्राप्त हो सकते हैं। स्वयं हमने ही भगवान्‌की प्राप्तिमें आड़ लगा रखी है कि वे वैरागी-त्यागी पुरुषोंको मिलते हैं, हम गृहस्थियोंको कैसे मिलेंगे? वे जंगलमें रहनेवालोंको मिलते हैं, हम शहरमें रहनेवालोंको कैसे मिलेंगे? कोई अच्छे गुरु नहीं मिलेंगे तो भगवान् कैसे मिलेंगे? कोई बढ़िया साधन नहीं करेंगे तो भगवान् कैसे मिलेंगे? आजकल भगवत्प्राप्तिका मार्ग बतलानेवाले कोई अच्छे महात्मा भी नहीं रहे तो हमें भगवान् कैसे मिलेंगे? हमारे भाग्यमें ही नहीं है तो भगवान् कैसे मिलेंगे? हम तो अधिकारी ही नहीं हैं तो भगवान् हमें कैसे मिलेंगे? हमारे कर्म ही ऐसे नहीं है तो भगवान् हमें कैसे मिलेंगे?—इस प्रकार न जाने कितनी आड़ें हमने स्वयं ही लगा रखी हैं। भगवान्‌को हमने इन आड़ोंके, पहाड़ोंके ही नीचे दबा दिया है! ऐसी स्थितिमें बेचारे भगवान् क्या करें? हमें कैसे मिलें?

पार्वतीने 'तप करनेसे शिवजी मिलेंगे', ऐसा भाव रखकर स्वयं ही

शिवजीकी प्राप्तिमें आड़ लगा दी थी, इसी कारण उन्हें तप करना पड़ा*। तपस्याका भाव भीतर रहनेके कारण तप करनेसे ही शिवजी मिले। इसी प्रकार भावके कारण ही ध्रुवको छः मासके तपके बाद भगवान् मिले। भगवान्के मिलनेमें वस्तुतः कोई देर नहीं लगी। जिस समय ऐसा भाव हुआ कि अब मैं भगवान्के बिना रह नहीं सकता, उसी समय भगवान् मिल गये।

किसी योग्यताके बदलेमें भगवान् मिलेंगे, यह बिलकुल गलत धारणा है। यह सिद्धान्त है कि किसी मूल्यके बदलेमें जो वस्तु प्राप्त होती है, वह वस्तुतः उस मूल्यसे कम मूल्यकी ही होती है। यदि दूकानदार किसी वस्तुको सौ रुपयेमें बेचता है तो निश्चय ही दूकानदारने उस वस्तुको सौ रुपयेसे कम

---

* पार्वतीके मनमें पहले ही यह भाव हो गया था कि शिवजीकी प्राप्ति कठिन है—

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा संदेहू॥

(मानस १।६८।३)

बादमें देवर्षि नारदने कह दिया कि तप करनेसे ही शिवजी मिल सकते हैं—

दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥

(मानस १।७०।२-३)

माता-पितासे भी पार्वतीको तप करनेकी ही प्रेरणा मिली—

अब जौं तुम्हहि सुता पर नेहू। तौ अस जाइ सिखावनु देहू॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू। आन उपायँ न मिटिहि कलेसू॥

(मानस १।७२।१)

स्वप्नमें भी पार्वतीको तप करनेकी ही शिक्षा मिली—

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य बिचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥

(मानस १।७३।१)

इन्हीं सब कारणोंसे पार्वतीके मनमें यह भाव दृढ़ हो गया कि तप करनेसे ही शिवजी मिलेंगे, अन्यथा नहीं।

मूल्यमें खरीदा होगा। इसी प्रकार यदि हम ऐसा मानते हैं कि विशेष योग्यता अथवा साधन, यज्ञ-दानादि बड़े-बड़े कर्मोंसे भगवान् मिलते हैं तो भगवान् उनसे कम मूल्यके ही हुए! परन्तु भगवान् किसीसे कम मूल्यके नहीं हैं×, इसलिये वे किसी साधन-सम्पत्तिसे खरीदे नहीं जा सकते*। यदि किसी मूल्यके बदलेमें भगवान् मिलते हैं तो ऐसे भगवान् मिलकर भी हमें क्या निहाल करेंगे? क्योंकि उनसे बढ़िया (अधिक मूल्यकी) वस्तुएँ, योग्यता, तप-दानादि तो हमारे पास पहलेसे ही हैं!

हम जैसा चाहते हैं, वैसे ही भगवान् हमें मिलते हैं। दो भक्त थे। एक भगवान् श्रीरामका भक्त था, दूसरा भगवान् श्रीकृष्णका। दोनों अपने-अपने भगवान् (इष्टदेव)-को श्रेष्ठ बतलाते थे। एक बार वे जंगलमें गये। वहाँ दोनों भक्त अपने-अपने भगवान्‌को पुकारने लगे। उनका भाव यह था कि दोनोंमेंसे जो भगवान् शीघ्र आ जायँ वही श्रेष्ठ हैं। भगवान् श्रीकृष्ण शीघ्र प्रकट हो गये। इससे उनके भक्तने उन्हें श्रेष्ठ बतला दिया। थोड़ी देरमें भगवान् श्रीराम भी प्रकट हो गये। इसपर उनके भक्तने कहा कि आपने मुझे हरा दिया; भगवान् श्रीकृष्ण तो पहले आ गये, पर आप देरसे आये, जिससे मेरा अपमान हो गया!

× अर्जुन भगवान्‌से कहते हैं—

न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव॥

(गीता ११। ४३)

'हे अनन्त प्रभावशाली भगवन्! इस त्रिलोकीमें आपके समान भी दूसरा कोई नहीं है, फिर आपसे अधिक तो हो ही कैसे सकता है?'

* भगवान् कहते हैं—

नाहं वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवंविधो द्रष्टुं दृष्टवानसि मां यथा॥

(गीता ११। ५३)

'हे अर्जुन! जिस प्रकार तुमने मुझे देखा है, इस प्रकारका चतुर्भुज रूपवाला मैं न वेदोंसे, न तपसे, न दानसे और न यज्ञसे ही देखा जा सकता हूँ।'

भगवान् श्रीरामने अपने भक्तसे पूछा—'तूने मुझे किस रूपमें याद किया था?' भक्त बोला—'राजाधिराजके रूपमें।' तब भगवान् श्रीराम बोले—'बिना सवारीके राजाधिराज कैसे आ जायँगे। पहले सवारी तैयार होगी, तभी तो वे आयँगे!' कृष्ण-भक्तसे पूछा गया तो उसने कहा—'मैंने तो अपने भगवान्को गाय चरानेवालेके रूपमें याद किया था कि वे यहीं जंगलमें गाय चराते होंगे।' इसीलिये वे पुकारते ही तुरन्त प्रकट हो गये।

दुःशासनके द्वारा भरी सभामें चीर खींचे जानेके कारण द्रौपदीने '**द्वारकावासिन् कृष्ण**' कहकर भगवान्को पुकारा, तो भगवान्के आनेमें थोड़ी देर लगी। इसपर भगवान्ने द्रौपदीसे कहा कि तूने मुझे '**द्वारकावासिन्**' (द्वारकामें रहनेवाले) कहकर पुकारा, इसलिये मुझे द्वारका जाकर फिर वहाँसे आना पड़ा। यदि तू कहती कि यहींसे आ जाओ तो मैं यहींसे प्रकट हो जाता।

भगवान् सब जगह हैं। जहाँ हम हैं, वहीं भगवान् भी हैं। भक्त जहाँसे भगवान्को बुलाता है, वहींसे भगवान् आते हैं। भक्तकी भावनाके अनुसार ही भगवान् प्रकट होते हैं—

जाके हृदयँ भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रगट सदा तेहिं रीती॥

× × ×

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

(मानस १। १८५। २-३)

जब भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंके बीचसे अन्तर्धान हो गये तो गोपियाँ पुकारने लगीं—

दयित दृश्यतां दिक्षु तावकास्त्वयि धृतासवस्त्वां विचिन्वते॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३१। १)

'हे प्रिय! तुममें अपने प्राण समर्पित कर चुकनेवाली हम सब तुम्हारी प्रिय गोपियाँ तुम्हें सब ओर ढूँढ़ रही हैं, अतएव अब तुम तुरन्त दिख जाओ।'

गोपियोंकी पुकार सुनकर भगवान् उनके बीचमें ही प्रकट हो गये—

तासामाविरभूच्छौरिः स्मयमानमुखाम्बुजः।
पीताम्बरधरः स्रग्वी साक्षान्मन्मथमन्मथः॥

(श्रीमद्भागवत १०। ३२। २)

'ठीक उसी समय उनके बीचोबीच भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हो गये। उनका मुखकमल मन्द-मन्द मुसकानसे खिला हुआ था, गलेमें वनमाला थी, पीताम्बर धारण किये हुए थे। उनका यह रूप क्या था, सबके मनको मथ डालनेवाले कामदेवके मनको भी मथनेवाला था।'

इस प्रकार गोपियोंने 'प्यारे! दिख जाओ' (**दयित दृश्यताम्**)—ऐसा कहा तो भगवान् वहीं दिख गये। यदि वे कहतीं कि कहींसे आ जाओ, तो भगवान् वहींसे आते।

भगवान्‌की प्राप्ति साधनके द्वारा होती है—यह बात भी यद्यपि सच्ची है, परन्तु इस बातको मानकर चलनेसे साधकको भगवत्प्राप्ति देरसे होती है। यदि साधकका ऐसा भाव हो जाय कि मुझे तो भगवान् अभी मिलेंगे, तो उसे भगवान् अभी ही मिल जायँगे। वे यह नहीं देखेंगे कि भक्त कैसा है, कैसा नहीं है? काँटोंवाले वृक्ष हों, घास हो, खेती हो, पहाड़ हो, रेगिस्तान हो या समुद्र हो; वर्षा सबपर समानरूपसे बरसती है। वर्षा यह नहीं देखती कि कहाँ पानीकी आवश्यकता है और कहाँ नहीं? इसी प्रकार जब भगवान् कृपा करते हैं तो यह नहीं देखते कि यह पापी है या पुण्यात्मा? अच्छा है या बुरा? वे सब जगह बरस जाते अर्थात् प्रकट हो जाते हैं*।

---

* आदि शंकराचार्यजीने कहा है—

अयमुत्तमोऽयमधमो जात्या रूपेण सम्पदा वयसा।
श्लाघ्योऽश्लाघ्यो वेत्थं न वेत्ति भगवाननुग्रहावसरे॥
अन्तःस्वभावभोक्ता ततोऽन्तरात्मा महामेघः।
खदिरश्चम्पक इव वा प्रवर्षणं किं विचारयति॥

(प्रबोधसुधाकर २५२-२५३)

पापी-से-पापी पुरुषको भी भगवान् मिल सकते हैं (गीता ९।३०)। सदन कसाई और डाकुओंको भी भगवान् मिल गये थे। भगवान् तो सर्वदा सर्वत्र विद्यमान हैं, केवल भावकी आवश्यकता है। **अन्तःकरणके अशुद्ध होनेपर वैसा भाव नहीं बनता, यह बात ठीक होते हुए भी वस्तुतः साधकके लिये बाधक है।** शास्त्रोंमें पतिव्रता स्त्रीकी बड़ी महिमा गायी गयी है कि भगवान् भी उसके वशमें हो जाते हैं। यदि कोई कहे कि हममें पातिव्रत-भाव नहीं बन सकता, तो यह उसकी भूल है। पापी-से-पापी पुरुषोंकी भी स्त्रियाँ पतिव्रता हुई हैं और श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ पुरुषोंकी भी। भगवान् श्रीरामकी पत्नी सीताजी भी पतिव्रता थीं और राक्षसराज रावणकी पत्नी मन्दोदरी भी पतिव्रता थी। ऐसा नहीं कि श्रीरामकी पत्नी तो पतिव्रता हो सकती है, पर रावणकी पत्नी नहीं। पातिव्रत-धर्मका पालन करनेके कारण ही मन्दोदरी तो भगवान् श्रीरामको तत्त्वसे जानती थी, परन्तु रावण नहीं जानता था (द्रष्टव्य—मानस, लंका० १५-१६)।

वर्तमान युग (कलियुग)-में तो भगवान् सुगमतासे मिलते हैं; क्योंकि अब उनके ग्राहक बहुत कम हैं। ग्राहक तो बहुत कम हों तो माल सस्ता मिलता है; क्योंकि तब बेचनेवालेको गरज होती है। इसलिये ऐसा भाव नहीं रखना चाहिये कि इस घोर कलियुगमें भगवान् इतनी सुगमतासे कैसे मिलेंगे?

अपना दृढ़ विचार कर लें कि चाहे दुःख आये या सुख, अनुकूलता आये या प्रतिकूलता, हमें तो भगवान्‌को प्राप्त करना ही है। यदि हम पहले अपने अन्तःकरणको शुद्ध करनेमें लग जायँगे तो भगवत्प्राप्तिमें बहुत देर लगेगी। हमारे उद्योग करनेकी अपेक्षा भगवान्‌की अनन्त अपार कृपाशक्ति हमें बहुत शीघ्र शुद्ध कर देगी। बच्चा कीचड़से लिपटा भी हो, यदि माँकी गोदमें

'किसीपर कृपा करते समय भगवान् ऐसा विचार नहीं करते कि यह जाति, रूप, धन और आयुसे उत्तम है या अधम? स्तुत्य है या निन्द्य?' यह अन्तरात्मा (श्रीकृष्ण)-रूप महामेघ आन्तरिक भावोंका ही भोक्ता है। मेघ क्या वर्षाके समय इस बातका विचार करता है कि यह खैर है अथवा चम्पा?'

चला जाय तो माँ स्वयं ही उसे साफ कर देती है।

एक राजा सायंकाल महलकी छतपर टहल रहे थे। सहसा उनकी दृष्टि नीचे बाजारमें घूमते हुए एक सन्तपर पड़ी। सन्त अपनी मस्तीमें ऐसे चल रहे थे कि मानो उनकी दृष्टिमें संसार है ही नहीं। राजा अच्छे संस्कारवाले पुरुष थे। उन्होंने अपने आदमियोंको उन सन्तको तत्काल ऊपर ले आनेकी आज्ञा दी। आज्ञा पाते ही राजपुरुषोंने ऊपरसे ही रस्से लटकाकर उन सन्तको (रस्सोंमें फँसाकर) ऊपर खींच लिया। इस कार्यके लिये राजाने उन सन्तसे क्षमा माँगी और कहा कि एक प्रश्नका उत्तर पानेके लिये ही मैंने आपको कष्ट दिया। प्रश्न यह है कि भगवान् शीघ्र कैसे मिलें? सन्तने कहा—'राजन्! इस बातको तुम जानते ही हो।' राजाने पूछा—'कैसे?' सन्त बोले—'यदि मेरे मनमें तुमसे मिलनेका विचार आता तो कई अड़चनें आती और बहुत देर लगती। पता नहीं मिलना सम्भव भी होता या नहीं। पर जब तुम्हारे मनमें मुझसे मिलनेका विचार आया, तब कितनी देर लगी?' राजन्! इसी प्रकार यदि भगवान्के मनमें हमसे मिलनेका विचार आ जाय तो फिर उनके मिलनेमें देर नहीं लगेगी।' राजाने पूछा—'भगवान्के मनमें हमसे मिलनेका विचार कैसे आ जाय?' सन्त बोले—'तुम्हारे मनमें मुझसे मिलनेका विचार कैसे आया?' राजाने कहा—'जब मैंने देखा कि आप एक ही धुनमें चले जा रहे हैं और सड़क, बाजार, दूकानें, मकान, मनुष्य आदि किसीकी भी तरफ आपका ध्यान नहीं है, तब मेरे मनमें आपसे मिलनेका विचार आया।' सन्त बोले—'राजन्! ऐसे ही तुम एक ही धुनमें भगवान्की तरफ लग जाओ, अन्य किसीकी भी तरफ मत देखो, उनके बिना रह न सको, तो भगवान्के मनमें तुमसे मिलनेका विचार आ जायगा और वे तुरन्त मिल जायँगे।'*

---

* भगवान् कहते हैं—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥

(गीता ८।१४)

भगवान् ही हमारे हैं, दूसरा कोई हमारा है ही नहीं। भगवान् कहते हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५) 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ।' और '**मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना**' (गीता ९। ४) 'यह सब संसार मेरे निराकार स्वरूपसे व्याप्त है।'

भगवान् हृदयमें ही नहीं, प्रत्युत दीखनेवाले समस्त संसारके कण-कणमें विद्यमान हैं। ऐसे सर्वत्र विद्यमान परमात्माको जब हम सच्चे हृदयसे देखना चाहेंगे, तभी वे दीखेंगे। **यदि हम संसारको देखना चाहेंगे तो भगवान् बीचमें नहीं आयेंगे, संसार ही दीखेगा।** हम संसारको देखना नहीं चाहते, उससे हमें कुछ भी नहीं लेना है, न उसमें राग करना है न द्वेष, हमें तो केवल भगवान्से प्रयोजन है—

इस भावसे हम एक भगवान्से ही घनिष्ठता कर लें। भगवान् हमारी बात सुनें या न सुनें, मानें या न मानें, हमें अपना लें या ठुकरा दें—इसकी कोई परवाह न करते हुए हम भगवान्से अपना अटूट सम्बन्ध (जो कि नित्य है) जोड़ लें*। जैसे माता पार्वतीने कहा था—

जन्म कोटि लगि रगर हमारी। बरउँ संभु न त रहउँ कुआरी॥
तजउँ न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू॥

(मानस, बाल० ८१। ३)

पार्वतीके मनमें यह भाव था कि शिवजीमें ऐसी शक्ति ही नहीं है कि वे मुझे स्वीकार न करें। इसी प्रकार हम सबका सम्बन्ध भगवान्के साथ है। हम भगवान्से विमुख भले ही हो जायँ, पर भगवान् हमसे विमुख कभी हुए नहीं, हो सकते नहीं। हमारा त्याग करनेकी उनमें शक्ति नहीं है।

'हे पृथानन्दन! अनन्य चित्तवाला जो मनुष्य मेरा नित्य-निरन्तर स्मरण करता है, उस नित्य-निरन्तर मुझमें लगे हुए योगीके लिये मैं सुलभ हूँ अर्थात् उसको सुलभतासे प्राप्त हो जाता हूँ।'

* वास्तवमें भगवान्के साथ हमारा सदासे ही अटूट सम्बन्ध है। परन्तु भगवान्से विमुख हो जानेके कारण हमें उस सम्बन्धका अनुभव नहीं होता।

बच्चा खेलना छोड़ दे और रोने लग जाय तो माँको अपना सब काम छोड़कर उसके पास आना पड़ता है और उसे गोदमें बैठाकर दुलारना पड़ता है; परन्तु यदि बच्चा खेलमें लगा रहे तो माँ निश्चिन्त रहती है। इसी प्रकार यदि हम भगवान्‌के लिये व्याकुल न होकर सांसारिक वस्तुओंमें ही प्रसन्न रहते हैं तो भगवान् निश्चिन्त रहते हैं और हमसे मिलने नहीं आते। यदि बच्चा लगातार रोने लग जाय और माँके बिना किसी भी वस्तु (खिलौने आदि)-से प्रसन्न न हो तो घरके सभी लोग बच्चेके पक्षमें हो जाते हैं और उसकी माँको कहते हैं—'बच्चा रो रहा है और तुम काममें लगी हो! आग लगे तुम्हारे कामको! जल्दी बच्चेको गोदमें ले लो।' उस समय माँ कितना ही आवश्यक कार्य क्यों न कर रही हो, बच्चेके रोनेके आगे उस कार्यका कोई मूल्य नहीं रहता। इसी प्रकार हम एकमात्र भगवान्‌के लिये रोने लग जायँ तो भगवद्धामके सब सन्तजन हमारे पक्षमें हो जायँ! वे सभी कहने लग जायँ—'महाराज! बच्चा रो रहा है; आप मिलनेमें देर क्यों कर रहे हैं?' फिर भगवान्‌के आनेमें कोई देर नहीं लगती। हाँ, जब बच्चा खिलौनोंसे खेल भी रहा हो और ऊपरसे ऊँ....ऊँ....भी कर रहा हो, तब उसे माँ गोदमें नहीं लेती। इसी प्रकार हम सांसारिक खिलौनोंसे भी खेलते हों और रोनेका ढोंग भी करते हों, तब भगवान् नहीं आते। **वे हमारे आन्तरिक भावको देखते हैं, क्रियाको नहीं।** मान-आदर, सुख-आराम, धन-सम्पत्ति, सिद्धियाँ आदि सब सांसारिक खिलौने हैं। जैसे माँकी गोद, उसका प्यार, खिलौने आदि सब कुछ बच्चेके लिये ही होते हैं, ऐसे ही भगवान्‌की गोद, उनका प्यार तथा उनके पास जो भी सामग्री है, सब भक्तके लिये ही होती है। यदि हम किसी भी वस्तुमें राजी न होकर भगवान्‌को पुकारने लगें तो वे तत्काल आ जायँगे। इसमें भविष्यकी

क्या बात है? माँ बच्चेकी योग्यताको देखकर उसके पास नहीं आती। वह यह नहीं देखती कि बच्चा बहुत सुन्दर है, विद्वान् है या धनवान् है। बच्चेमें माँको बुलानेकी यही एक योग्यता है कि वह केवल माँको चाहता है और माँके सिवाय दूसरी किसी भी वस्तुसे राजी नहीं होता।

भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध स्वतन्त्रतासे, स्वाभाविक है।

सांसारिक पदार्थोंके साथ हमारा सम्बन्ध स्वाभाविक नहीं है। मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर आदि सब पदार्थ निरन्तर बहे जा रहे हैं। उनके साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। भगवान् ही हमारे हैं। बच्चेमें कोई योग्यता, विद्वत्ता, शूरवीरता आदि नहीं होती, केवल उसमें 'माँ मेरी है'—ऐसा माँमें मेरापन होता है। **इस मेरापनमें बड़ी भारी शक्ति है, जो भगवान्‌को भी खींच सकती है।** इसीके कारण भक्तराज प्रह्लादने पत्थरसे भी भगवान्‌को निकाल लिया—

प्रेम बदौं प्रहलादहिको, जिन पाहनतें परमेस्वरु काढ़े॥

(कवितावली १२७)

संसारका हमसे प्रतिक्षण वियोग हो रहा है। शरीर, कुटुम्ब, धन-सम्पत्ति आदि सब पदार्थ पहले नहीं थे और बादमें भी नहीं रहेंगे। दृश्यमात्र निरन्तर अदर्शनको प्राप्त हो रहा है। कोई पदार्थ साठ वर्षतक रहनेवाला हो तो एक वर्ष बीत जानेपर वह उन्सठ वर्षका ही रहेगा; क्योंकि वह निरन्तर नाशकी ओर जा रहा है। हम नहीं रहनेवाले सांसारिक पदार्थोंको अपना मानते हैं और सदा रहनेवाले परमात्माको अपना नहीं मानते, यह बड़ी भारी भूल है। भगवान् वर्तमानमें हैं और हमारे हैं—इस बातपर हम दृढ़तापूर्वक डट जायँ, तो भगवान् वर्तमानमें ही मिल जायँगे। **केवल उत्कट अभिलाषा* होनेकी देर है, भगवान्‌के मिलनेमें देर नहीं है।** अपने भावके अनुसार चाहे आज भगवान्‌को प्राप्त कर लो, चाहे भविष्यमें—वर्षों या जन्मोंके बाद!

[गीताभवन, वटवृक्षके नीचे ज्येष्ठ कृष्ण ५, वि० सं० २०३५, दिनांक २७.५.१९७८ को प्रात: ८ बजे दिया गया प्रवचन]

---

* भगवत्प्राप्तिकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् करनेका उपाय है—सम्पूर्ण सांसारिक इच्छाओंका त्याग करना और दूसरे हमसे जो न्याययुक्त इच्छा करें, उसे यथाशक्ति पूरी कर देना।

भगवत्प्राप्ति सुगम कैसे?

(१)

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। इतना सुगम दूसरा कोई काम नहीं है। परन्तु केवल परमात्माकी ही चाहना रहे, साथमें दूसरी कोई भी चाहना न रहे। कारण कि परमात्माके समान दूसरा कोई है ही नहीं। जैसे परमात्मा अनन्य हैं, ऐसे ही उनकी चाहना भी अनन्य होनी चाहिये। सांसारिक भोगोंके प्राप्त होनेमें तीन बातें होनी जरूरी हैं—इच्छा, उद्योग और प्रारब्ध। पहले तो सांसारिक वस्तुको प्राप्त करनेकी 'इच्छा' होनी चाहिये, फिर उसकी प्राप्तिके लिये 'कर्म' करना चाहिये। कर्म करनेपर भी उसकी प्राप्ति तब होगी, जब उसके मिलनेका 'प्रारब्ध' होगा। अगर प्रारब्ध नहीं होगा तो इच्छा रखते हुए और उद्योग करते हुए भी वस्तु नहीं मिलेगी। इसलिये उद्योग तो करते हैं नफेके लिये, पर लग जाता है घाटा! परन्तु **परमात्माकी प्राप्ति इच्छामात्रसे होती है। उसमें उद्योग और प्रारब्धकी जरूरत नहीं है।** परमात्माके मार्गमें घाटा कभी होता ही नहीं, नफा-ही-नफा होता है।

(२)

यह एक बड़ा भारी वहम है कि 'करने' से ही परमात्मप्राप्ति होगी। अत: भजन करो, जप करो, सत्संग करो, स्वाध्याय करो, ध्यान करो, समाधि लगाओ। इस प्रकार 'करने' पर ही बड़ा भारी जोर है। बातोंसे कुछ नहीं होगा, करनेसे होगा—यह धारणा रोम-रोममें बैठी हुई है। परन्तु मैं इससे विलक्षण बात कहता हूँ कि 'है'-रूपसे जो सर्वत्र परिपूर्ण सत्ता है, जिसमें कभी किंचिन्मात्र भी परिवर्तन नहीं होता, उसीमें ही मैं हूँ। 'मैं' और वह 'है' एक ही है। जब ऐसा ठीक तरहसे जान लिया तो फिर क्या करना रहा? क्या जानना रहा? क्या पाना रहा? मैं नित्य-निरन्तर परमात्मामें हूँ—यह असली शरणागति है। उस सर्वत्र परिपूर्ण 'है' (परमात्मतत्त्व)-से अलग कोई हो ही नहीं सकता।

उस 'है' की ही प्राप्ति करनी है, 'नहीं' की प्राप्ति नहीं करनी है। 'नहीं' की प्राप्ति होगी तो अन्तमें 'नहीं' ही रहेगा। जो नहीं है, वह प्राप्त होनेपर भी रहेगा कैसे? इसलिये 'है' की ही प्राप्ति करनी है और उस 'है' की प्राप्ति नित्य-निरन्तर है!

(३)

जो चीज जितनी श्रेष्ठ और आवश्यक होती है, उतनी ही वह सस्ती मिलती है। हीरा-पन्ना हमें उम्रभर देखनेको न मिलें तो भी हम जी सकते हैं, इसलिये वे बहुत महँगे मिलते हैं। अन्न उससे भी सस्ता मिलता है; क्योंकि अन्नके बिना हम जी नहीं सकते। अन्नसे भी जल ज्यादा आवश्यक है, इसलिये वह अन्नसे भी सस्ता मिलता है। जलके बिना तो हम कुछ रह सकते हैं, पर हवाके बिना तो रह ही नहीं सकते, इसलिये हवा मुफ्तमें मिलती है तथा सब जगह मिलती है। परन्तु परमात्मा उससे भी सस्ते हैं! हवा कहीं कम मिलती है, कहीं ज्यादा; कभी तेज चलती है, कभी मन्द; परन्तु परमात्मा सब जगह तथा सब समय समान रीतिसे ज्यों-के-त्यों परिपूर्ण हैं, और वे सबके अपने हैं। उनके बिना कोई भी चीज नहीं है। पृथ्वी, जल, हवा, अग्नि और आकाश तो सदा नहीं रहेंगे, पर परमात्मा सदा ज्यों-के-त्यों रहेंगे। अतः **परमात्मा सबसे आवश्यक हैं और सबसे सस्ते हैं।** आपने सांसारिक चीजोंको ज्यादा महत्त्व दे रखा है, इसलिये परमात्मा दीखते नहीं। इनको इतना महत्त्व मत दो, परमात्मा दीख जायँगे, उनकी प्राप्ति हो जायगी।

(४)

निर्माण और खोज—दोनोंमें बहुत अन्तर है। निर्माण उस वस्तुका होता है, जिसका पहलेसे अभाव होता है और खोज उस वस्तुकी होती है, जो पहलेसे ही विद्यमान होती है। **परमात्मा नित्यप्राप्त और स्वतःसिद्ध हैं, इसलिये उनकी खोज होती है, निर्माण नहीं होता।** जब साधक परमात्माकी सत्ताको स्वीकार करता है, तब खोज होती है। खोज करनेके दो प्रकार हैं—एक तो

कण्ठी कहीं रखकर भूल जायँ तो हम जगह-जगह उसकी खोज करते हैं; और दूसरा, कण्ठी गलेमें ही हो, पर वहम हो जाय कि कण्ठी खो गयी तो हम जगह-जगह उसकी खोज करते हैं। परमात्माकी खोज गलेमें पड़ी कण्ठीकी खोजके समान है। वास्तवमें परमात्मा खोया नहीं है। संसारमें अपने रागके कारण परमात्माकी तरफ दृष्टि नहीं जाती। उधर दृष्टि न जाना ही उसका खोना है। तात्पर्य है कि **जिस परमात्माको हम चाहते हैं और जिसकी हम खोज करते हैं, वह परमात्मा नित्य-निरन्तर अपनेमें ही मौजूद है!** परन्तु संसार अपनेमें नहीं है। जो अपनेमें है, उसकी खोज करनेसे परिणाममें वह मिल जाता है। परन्तु जो अपनेमें नहीं है, उसकी खोज करनेसे परिणाममें वह मिलता नहीं; क्योंकि वास्तवमें उसकी सत्ता ही नहीं है।

(५)

प्रकृतिसे तो हमारा निरन्तर सम्बन्ध-विच्छेद हो रहा है। कोई भी अवस्था निरन्तर नहीं रहती। परन्तु सत्-तत्त्वसे किसीका भी सम्बन्ध-विच्छेद कभी हुआ नहीं, हो सकता नहीं और है नहीं। फिर उसके लिये किसी परिश्रमकी क्या आवश्यकता है? इसलिये शास्त्रमें आया—'**सन्मात्रं सुगमं नृणाम्**' अर्थात् सत्तामात्रकी प्राप्ति मनुष्योंके लिये बहुत सुगम है। वास्तवमें उसकी प्राप्तिको सुगम कहना भी नहीं बनता। सुगमता-कठिनता तो अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिमें होती है। जो नित्यप्राप्त है, उसके लिये क्या सुगमता और क्या कठिनता? जैसे—'मैं हूँ' इस प्रकार अपनी सत्ताका अनुभव सभीको है। वस्तु, परिस्थिति, अवस्था आदिके अभावका अनुभव सबको होता है, पर स्वयंके अभावका अनुभव किसीको कभी नहीं होता, प्रत्युत सबको सदा ही अपने भावका अनुभव होता है। **साधकको चाहिये कि वह 'मैं हूँ'—इसमें 'मैं' को आदर न देकर 'हूँ' को अर्थात् निर्विकार नित्य सत्ताको आदर दे।** 'हूँ' को आदर देनेसे 'मैं' (अहम्) मिट जायगा और 'है' रह जायगा।

(६)

बोध तो स्वतः प्राप्त है, पर हमारे पुराने संस्कार, पुरानी मान्यताएँ उसमें बाधक हो रही हैं, जो कि असत्-रूप हैं और सत्तारूपसे मानी हुई हैं; जैसे—सब काम धीरे-धीरे, समय पाकर होते हैं, फिर बोध तत्काल कैसे हो जायगा? अनादिकालका अज्ञान इतनी जल्दी कैसे मिट जायगा? आदि-आदि। यह सब हमारा वहम है। **एक गुफामें लाखों वर्षोंसे अँधेरा हो और उसमें दीपक जला दिया जाय तो क्या अँधेरा दूर होनेमें भी लाखों वर्ष लगेंगे?**

(७)

हम परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, तत्त्वज्ञान चाहते हैं, मुक्ति चाहते हैं, भगवान्‌के दर्शन चाहते हैं, भगवत्प्रेम चाहते हैं; परन्तु हमारी इस चाहकी सिद्धिमें एक बहुत बड़ी बाधा हमारी यह मान्यता है कि 'भविष्यमें काफी समयके बाद भगवत्प्रेम होगा; समय लगेगा, तब कहीं भगवान् दर्शन देंगे; समय पाकर ही तत्त्वज्ञान होगा; परमात्माकी प्राप्तिमें तो समय लगेगा' इत्यादि। **यह जो भविष्यकी आशा है कि फिर होगा, वही परमात्मप्राप्तिमें सबसे बड़ी बाधा है!**

सांसारिक पदार्थोंकी प्राप्तिके लिये तो भविष्यकी आशा करना उचित है; क्योंकि सांसारिक पदार्थ सदा सब जगह विद्यमान नहीं हैं; परन्तु सच्चिदानन्दघन परमात्मा तो सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु और व्यक्तिमें विद्यमान हैं, उनकी प्राप्तिमें भविष्यका क्या काम? इस तथ्यकी ओर प्रायः साधकोंका ध्यान ही नहीं जाता। वे यही मान बैठते हैं कि 'इतना साधन करेंगे, इतना नामजप करेंगे, ऐसी-ऐसी वृत्तियाँ बनेंगी, इतना अन्तःकरण शुद्ध होगा, इतना वैराग्य होगा, भगवान्‌में इतना प्रेम होगा, ऐसी अवस्था होगी, ऐसी योग्यता होगी, तब कहीं परमात्माकी प्राप्ति होगी!' इस प्रकार अनेक आड़ें (रुकावटें) साधकोंने स्वयं ही लगा रखी हैं। यही महान् बाधा है!

(८)

आपने परमात्माकी प्राप्तिको कठिन मान रखा है, पर वास्तवमें यह कठिन नहीं है। **परमात्मप्राप्ति कठिन है—आपकी इस मान्यताके कारण परमात्मप्राप्ति कठिन है, और इस मान्यताको छुड़ाना कठिन है!** परमात्मा तो अपने हैं। अपनी माँकी गोदीमें जानेमें क्या कठिनता है? इसमें क्या अपनी किसी योग्यता, विद्या, बुद्धि, बल, धन, आदिकी जरूरत पड़ती है? केवल अपनेपनकी जरूरत है। संसारमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है। संसारकी चीजको अपनी मानकर भगवान्‌को कठिन मान लिया! अपने केवल भगवान् हैं, जो सदा हमारे साथमें रहते हैं। आप स्वर्ग, नरक, चौरासी लाख योनियाँ आदि कहीं जाओ, भगवान् सदा साथमें रहते हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५) 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ'; '**अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशयस्थितः**' 'मैं ही सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित आत्मा हूँ'। परमात्माके सिवाय और कोई चीज आपके साथ रहती ही नहीं, और भगवान् आपका पिण्ड छोड़ते नहीं! **ऐसा कोई समय नहीं है, जिस समय भगवान् आपके साथ न हों**। परन्तु उस तरफ आपकी दृष्टि नहीं रहती। भगवान् सबके साथ हर समय रहते हैं और बड़ी कृपा करके रहते हैं।

(९)

पण्ढरपुरमें चातुर्मास हुआ था। उसमें मैंने एक दिन कह दिया कि तत्त्वकी प्राप्ति तो बड़ी सरल बात है! इसको सुनकर कुछ लोग कहने लगे कि तुकारामजी महाराजने ऐसा-ऐसा कहा है, तत्त्वप्राप्तिमें तो कठिनता है। तब मैंने एक बात कही कि मैं मराठी जानता नहीं, महाराष्ट्रके सन्तोंकी वाणी मैंने पढ़ी नहीं; परन्तु मेरी एक धारणा है कि ज्ञानेश्वरजी, तुकारामजी आदि सन्तोंको भगवत्प्राप्ति हुई थी, वे तत्त्वज्ञ पुरुष थे। तत्त्वज्ञ पुरुषके भीतर यह भाव रह सकता ही नहीं कि तत्त्वप्राप्ति कठिन है। अतः उनकी वाणीमें 'तत्त्वकी प्राप्ति

सुगमतासे होती है'—यह बात नहीं आये, ऐसा हो ही नहीं सकता! इतनेमें एक आदमी बोल गया वाणी कि ऐसे सुगम लिखा है उसमें! लिखे बिना रह सकते नहीं। जो वास्तविक बात है, उसको वे कैसे छोड़ देंगे? तत्त्वको बनाना थोड़े ही है, वह तो ज्यों-का-त्यों विद्यमान है। फिर उसकी प्राप्तिमें कठिनता किस बातकी?

(१०)

परमात्मतत्त्व सब देशमें है, सब कालमें है, सम्पूर्ण व्यक्तियोंमें है, सम्पूर्ण वस्तुओंमें है, सम्पूर्ण घटनाओंमें है, सम्पूर्ण परिस्थितियोंमें है, सम्पूर्ण क्रियाओंमें है। वह सबमें एक रूपसे, समान रीतिसे ज्यों-का-त्यों परिपूर्ण है। अब उसको प्राप्त करना कठिन है तो सुगम क्या होगा? **जहाँ चाहो, वहीं प्राप्त कर लो!**

प्रश्नोत्तर

प्रश्न—जब भगवत्प्राप्तिके लिये ही मनुष्यशरीर मिला है तो फिर भगवत्प्राप्ति कठिन क्यों दीखती है?

स्वामीजी—भोगोंमें आसक्ति रहनेके कारण। भगवत्प्राप्ति कठिन नहीं है, भोगोंकी आसक्तिका त्याग कठिन है।

प्रश्न—भगवत्प्राप्ति कठिन कहें अथवा भोगासक्तिका त्याग कठिन कहें, बात तो एक ही हुई?

स्वामीजी—नहीं, बहुत बड़ा अन्तर है। भगवत्प्राप्तिको कठिन माननेसे साधक श्रवण, मनन, जप, स्वाध्याय आदिमें ही तेजीसे लगेगा और भोगासक्तिके त्यागकी तरफ ध्यान नहीं देगा। वास्तवमें भगवान् तो प्राप्त ही हैं, केवल संसारके सम्बन्धका त्याग करना है।

प्रश्न—भगवत्प्राप्ति सुगम कैसे है?

स्वामीजी—भगवान् नित्यप्राप्त हैं। वे प्रत्येक देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति और घटनामें परिपूर्ण हैं। **उनकी प्राप्ति जड़ता (शरीर-संसार)-के द्वारा नहीं होती, प्रत्युत जड़ताके त्यागसे होती है।** परन्तु नाशवान् संसारकी तरफ दृष्टि रहनेसे, नाशवान् सुखकी आसक्ति रहनेसे नित्यप्राप्त परमात्माका अनुभव नहीं होता। यह जानते हैं कि शरीर-संसार नाशवान् हैं, फिर भी इस जानकारीको आदर नहीं देते! **वास्तवमें 'शरीर-संसार नाशवान् हैं'—इसको सीख लिया है, जाना नहीं है। इसलिये नाशवान् जानते हुए भी सुख-लोलुपताके कारण उसमें फँसे रहते हैं।** वास्तवमें नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति करनी है और नित्यप्राप्तकी प्राप्ति करनी है।

प्रश्न—नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति और नित्यप्राप्तकी प्राप्ति करना क्या है?

स्वामीजी—नित्यनिवृत्तकी निवृत्ति करनेका तात्पर्य है—जो

नित्यनिवृत्त है, उस शरीर-संसारको रखनेकी भावना छोड़ना अर्थात् वह बना रहे—इस इच्छाका त्याग करना। नित्यप्राप्तकी प्राप्ति करनेका तात्पर्य है—जो नित्यप्राप्त है, उस परमात्मतत्त्वको श्रद्धा-विश्वासपूर्वक स्वीकार करना।

जो कभी भी अलग होगा, वह अब भी अलग है और जो कभी भी मिलेगा, वह अब भी मिला हुआ है। शरीर, वस्तु, योग्यता और सामर्थ्य 'नित्यनिवृत्त' अर्थात् सदा ही हमसे अलग हैं और परमात्मा 'नित्यप्राप्त' अर्थात् सदा ही हमें प्राप्त हैं। जो तत्त्व सब जगह ठोस रूपसे विद्यमान है, वह हमसे दूर हो सकता ही नहीं। परमात्मा कभी हमसे अलग हुए नहीं, हैं नहीं, होंगे नहीं और हो सकते नहीं; क्योंकि उसीकी सत्तासे हम सत्तावान् हैं।

प्रश्न—परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है तो फिर उसमें बाधा क्या लग रही है?

स्वामीजी—अनेक बाधाएँ हैं; जैसे—

(१) भोग भोगने और संग्रह करनेमें आसक्ति है।

(२) परमात्मप्राप्तिकी जोरदार जिज्ञासा (भूख) नहीं है।

(३) अपनी वर्तमान स्थितिमें सन्तोष कर रखा है।

(४) परमात्मप्राप्तिको सांसारिक वस्तुओंकी प्राप्तिकी तरह मान रखा है। इस मान्यताके कारण क्रिया करनेको अधिक महत्त्व देते हैं, विवेक और भावको महत्त्व नहीं देते।

(५) तत्त्वको ठीक तरहसे जाननेवाले महात्मा नहीं मिले।

(६) थोड़ी-सी बातें जानकर, थोड़ा-सा साधन करके अभिमान कर लेते हैं।

(७) कुछ करनेसे प्राप्ति होगी, गुरु नहीं मिला, समय ऐसा ही है,

प्रारब्ध ऐसा ही है, हम योग्य नहीं हैं, हम अधिकारी नहीं हैं—ऐसे जो संस्कार भीतर बैठे हैं, वे बाधा देते हैं।

श्रोता—गृहस्थाश्रममें रहते हुए कल्याण हो सकता है क्या?

स्वामीजी—भूखेको भोजन मिलता है और भूखा ही भोजनका अधिकारी होता है। जो जिस चीजका जिज्ञासु होता है, उसको वह चीज मिलती है। विचार करें कि कल्याण किसका होता है? कल्याण शरीरका नहीं होता, प्रत्युत जीवात्माका होता है। जीवात्मा न ब्रह्मचारी है, न गृहस्थ है, न वानप्रस्थ है, न संन्यासी है। वह न ब्राह्मण है, न क्षत्रिय है, न वैश्य है, न शूद्र है। वह न हिन्दू है, न मुसलमान है, न ईसाई है, न यहूदी है, न पारसी है। जीवात्मा तो परमात्माका अंश है।

कल्याण उसका होता है, जो कल्याण चाहता है। भोजन उसको भाता है, जो भूखा होता है। आप सच्ची बातपर विचार करो कि क्या ब्राह्मणका कल्याण हो जायगा? क्या साधुका कल्याण हो जायगा? क्या किसी भाई या बहनका कल्याण हो जायगा? कोई ऊँचे कुलमें उत्पन्न हुआ हो तो क्या उसका कल्याण हो जायगा? किसीके पास पैसे ज्यादा हों तो क्या उसका कल्याण हो जायगा? किसीका बल ज्यादा हो तो क्या उसका कल्याण हो जायगा? मनमें कल्याणकी इच्छा हुए बिना कल्याण कैसे हो जायगा? **भूखके बिना भोजन भी नहीं कर सकते तो क्या लगनके बिना परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी?** कोई किसी भी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, धर्म आदिका हो, जो हृदयसे परमात्माको चाहता है, उसको परमात्मा नहीं मिलेंगे तो किसको मिलेंगे? चाहनेसे परमात्मा ही मिलते हैं, संसार नहीं मिलता। **परमात्माकी प्राप्ति न ब्राह्मणको होती है, न साधुको होती है, न पुरुषको होती है, न स्त्रीको होती है, प्रत्युत 'भक्त' को होती है।** वर्ण-आश्रमकी मर्यादा व्यवहारके लिये आवश्यक है। विवाह, भोजन आदिमें वर्ण, जातिका विचार करना चाहिये; क्योंकि उसमें

शरीरका सम्बन्ध होता है। दूसरे वर्णमें विवाह होगा तो वर्णसंकर पैदा होगा।

कल्याण स्वयंका होता है; क्योंकि स्वयं कल्याण चाहता है। मुमुक्षुकी मुक्ति होती है। जिज्ञासुको तत्त्वज्ञान होता है। इसी तरह जो पाप करता है, वह नरकोंमें जायगा, चाहे वह किसी वर्ण-आश्रमका हो। अगर ब्राह्मणका ही कल्याण होगा तो 'मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है'—यह शास्त्रकी बात कट जायगी! सब जीव परमात्माके अंश हैं। कोल, भील, किरात भी परमात्माके अंश हैं। साँप, बिच्छू भी परमात्माके अंश हैं। परमात्माके अंशको ही परमात्माकी प्राप्ति होती है। अपनी माँके पास जानेमें सबका अधिकार है।

भगवत्प्राप्तिके विविध सुगम उपाय

१. भगवत्प्राप्तिकी सच्ची लगन होना

(१)

परमात्मतत्त्वकी प्राप्तिके समान सुगम और जल्दी सिद्ध होनेवाला कार्य कोई है नहीं, था नहीं, होगा नहीं और हो सकता नहीं! परिश्रम और देरी तो उस वस्तुकी प्राप्तिमें लगती है, जो है नहीं, प्रत्युत बनायी जाय। जो स्वतः-स्वाभाविक विद्यमान है, उसकी प्राप्तिमें परिश्रम और देरी कैसी? जैसे, गंगाजीको पृथ्वीपर लानेमें बहुत जोर पड़ा और अनेक पीढ़ियाँ खत्म हो गयीं, पर अब 'गंगाजी हैं'—ऐसा जाननेमें क्या जोर पड़ता है? परन्तु **स्वयंकी भूख, लगन न हो तो यह सुगमता किस कामकी?** अगर स्वयंकी लगन हो तो सब-के-सब मनुष्य सुगमतापूर्वक और तत्काल जीवन्मुक्त हो सकते हैं!

(२)

सम्पूर्ण देश, काल, क्रिया, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति, घटना आदिका अभाव होनेपर भी जो शेष रहता है, वही परमात्मतत्त्व है। उस तत्त्वका अभाव कभी हुआ नहीं, है नहीं, होगा नहीं और हो सकता नहीं। उस तत्त्वमें हमारी स्थिति स्वतः है। इसलिये **वह तत्त्व हमारेसे अलग नहीं है और हम उससे अलग नहीं हैं। वह हमारेसे दूर नहीं है और हम उससे दूर नहीं हैं। वह हमारेसे रहित नहीं है और हम उससे रहित नहीं हैं। वह हमारा त्याग नहीं कर सकता और हम उसका त्याग नहीं कर सकते।** वही तत्त्व सबका प्रकाशक, सबका आधार, सबका आश्रय, सबका रक्षक, सबका उत्पादक, सबका ज्ञाता, प्रेमास्पद, अन्तरात्मा, आत्मदृक्, विश्वात्मा आदि अनेक नामोंसे कहा जाता है। उस नित्यप्राप्त तत्त्वका अनुभव करनेमें कोई भी मनुष्य असमर्थ, पराधीन, अनधिकारी नहीं है। वह तत्त्व केवल उत्कट अभिलाषामात्रसे प्राप्त हो जाता है।

(३)

परमात्माकी प्राप्तिका उपाय है—असली भीतरकी लगन। जैसे प्यास लगे तो जल याद आता है, भूख लगे तो अन्न याद आता है, ऐसे भगवान्‌की याद आये। आप पापी, दुराचारी कैसे ही हों, एक भगवान्‌की लगन लग जाय तो सब ठीक हो जायगा। एक भगवान्‌के सिवाय कोई चाहना न हो तो भगवान् मिल जायँगे। कारण कि मनुष्यशरीरका प्रयोजन ही भगवान्‌को प्राप्त करना है। सब काम करते हुए भी भीतर लगन भगवान्‌की ही रहे।

हाथ काम मुख राम है, हिरदै साची प्रीत।
दरिया गृहस्थी साध की, याही उत्तम रीत॥

(४)

असत्‌को 'मैं' और 'मेरा' मान लिया—मूलमें यहाँसे भूल हुई। यही मूल भूल है। इस भूलको मिटाकर अपने निर्विकार स्वरूपमें स्थित हो जाओ। जबतक मूल भूल न मिटे, तबतक चैन नहीं आना चाहिये। छोटा बालक हर समय अपनी माँकी गोदीमें रहना चाहता है। गोदीसे नीचे उतरते ही वह रोने लग जाता है। आप भी हर समय सत् (भगवान्)-की गोदीमें रहो। असत्‌में जाते ही रोने लग जाओ कि अरे! कहाँ आ पड़े! हम तो गोदीमें ही रहेंगे। फिर असत्‌का सम्बन्ध सुगमतासे छूट जायगा।

(५)

मैं शरीरसे अलग हूँ—ऐसा अनुभव न हो तो भी इसको जबर्दस्ती मान लो। जैसे बीमारीसे छूटनेके लिये आप कड़वी-से-कड़वी दवा, चिरायते आदिका काढ़ा भी आँखें मीचकर पी लेते हो, ऐसे ही स्वस्थ होनेके लिये आप 'मैं अलग हूँ'—ऐसा मान लो। फिर भी ठीक अलग न दीखे तो व्याकुल हो जाओ कि अलग अनुभव जल्दी कैसे हो! व्याकुलता जोरदार हो जायगी तो

चट अनुभव हो जायगा। परन्तु भोगोंमें रस लेते रहोगे, सुख लेते रहोगे तो चाहे कितना ही पढ़ जाओ, पण्डित बन जाओ, चारों वेद पढ़ जाओ, पर शरीरसे अलगावका अनुभव कभी नहीं होगा।

(६)

जिस दिन साधकके भीतर यह उत्कट अभिलाषा जाग्रत् हो जाती है कि परमात्मा अभी ही प्राप्त होने चाहिये, अभी.....अभी.....अभी, उसी दिन उसे परमात्मप्राप्ति हो सकती है! साधककी योग्यता, अभ्यास आदिके बलपर परमात्माकी प्राप्ति हो जाय—यह सर्वथा असम्भव है। परमात्माकी प्राप्ति केवल उत्कट अभिलाषासे ही हो सकती है। आप सगुण या निर्गुण, साकार या निराकार, किसी भी तत्त्वको मानते हों, उसके बिना आपसे रहा नहीं जाय, उसके बिना चैन न पड़े। भक्तिमती मीराबाईने कहा है—'***हेली म्हास्यूँ हरि बिनु रह्यो न जाय***' हे सखी, मुझसे हरिके बिना रहा नहीं जाता।' निर्गुण उपासकोंने भी यही कहा है—

चितवन मोरी तुमसे लागी पिया।
दिन नहिं भूख रैन नहिं निद्रा, छिन छिन व्याकुल होत हिया॥

तत्त्वकी प्राप्तिके बिना दिनमें भूख नहीं लगती और रातमें नींद नहीं आती! आप कैसे मिलें! क्या करूँ! हृदयमें क्षण-क्षण व्याकुलता बढ़ रही है। उसे छोड़कर और कुछ सुहाता नहीं। सन्तोंने भी कहा है—

नारायन हरि लगन में, ये पाँचों न सुहात।
विषयभोग, निद्रा, हँसी, जगत प्रीत, बहु बात॥

ये विषयभोगादि पाँचों चीजें जिस दिन सुहायेंगी नहीं, अपितु कड़वी अर्थात् बुरी लगेंगी, भगवान्‌का वियोग सहा नहीं जायगा, उसी दिन प्रभु मिल जायँगे!

(७)

अगर घरमें कोई आदमी भूखा हो तो आप उसको दाल, भात, हलवा, पूरी आदि कुछ भी बनाकर दे सकते हैं, पर भूख नहीं दे सकते। भूख तो उसकी खुदकी चाहिये। इसी तरह उत्कट अभिलाषा खुदकी चाहिये। उत्कट अभिलाषा होनेपर भगवत्प्राप्तिमें देरीका कारण ही नहीं है। **आप देखनेको तैयार और भगवान् दीखनेको तैयार, फिर देरीका कारण क्या है ?**

(८)

बिलकुल शास्त्रसम्मत बात है कि क्रियाओंके द्वारा भगवान्पर कब्जा नहीं कर सकते। कितनी ही योग्यता प्राप्त कर लें, उनपर अधिकार नहीं जमा सकते। कारण कि इनके द्वारा अधिकार उसीपर होता है, जो इनसे कमजोर होता है। सौ रुपयोंके द्वारा हम उसी चीजपर कब्जा कर सकते हैं, जो सौ रुपयोंसे कम कीमतकी है। कोई चीज सौ रुपयोंकी है तो हम एक सौ पचीस रुपये देकर उस चीजपर कब्जा कर सकते हैं। ऐसे ही भगवान्को किसी योग्यतासे खरीदेंगे तो उस योग्यतासे कमजोर भगवान् ही मिलेंगे। अत: ये विरक्त हैं, ये त्यागी हैं, ये विद्वान् हैं, ये बड़े हैं, इनको भगवान् मिलेंगे, हमारेको नहीं—यह धारणा बिलकुल गलत है। **अगर आप भगवान्के लिये व्याकुल हो जाओ, उनके बिना रह न सको, तो बड़े-बड़े पण्डित और बड़े-बड़े विरक्त तो रोते रहेंगे, पहले आपको भगवान् मिलेंगे!** आप भगवान्के बिना रह नहीं सकोगे तो भगवान् भी आपके बिना रह नहीं सकेंगे!

(९)

एक बातपर आप विशेष ध्यान दें। हमारे अन्त:करणकी शुद्धि होगी, तब तत्त्वको जानेंगे—यह है भविष्यकी आशा। तत्त्व भूत, भविष्य और वर्तमान—तीनोंमें है और तीनोंसे अतीत है। ऐसा कोई देश, काल, वस्तु, व्यक्ति, अवस्था, परिस्थिति आदि नहीं, जिसमें तत्त्व न हो। उस तत्त्वमें देश, काल, वस्तु आदि कुछ नहीं है। जब ऐसी बात है तो बताओ कि किस देश,

काल, वस्तु, परिस्थिति आदिमें हम उसे नहीं जान सकते अथवा नहीं प्राप्त कर सकते? न हमारेमें करण है, न उसमें करण है, फिर उसे जाननेमें देरी क्या? करणके द्वारा उसे जानना चाहो तो करणकी शुद्धि करनी पड़ेगी, और करणके द्वारा उस तत्त्वको जान सका हो, ऐसा आजतक कोई हुआ नहीं!

तत्त्वको जाननेकी जो वेदान्तकी प्रक्रिया है, उसमें पहले विवेक, वैराग्य, शमादि षट्सम्पत्ति और मुमुक्षा—ये साधन-चतुष्टय सम्पन्न होता है। फिर श्रवण, मनन और निदिध्यासन—ये तीन साधन करने पड़ते हैं। इसके बाद तत्त्वंपदार्थका संशोधन होता है। तत्त्वंपदार्थ-संशोधनके बाद सबीज समाधि होती है। यहाँतक अन्त:करण (प्रकृति)-का साथ है। अन्त:करणसे सर्वथा सम्बन्ध-विच्छेद होनेपर निर्बीज समाधि होती है। जब निर्बीज समाधि होगी, तब तत्त्व-साक्षात्कार होगा। यह प्रक्रिया अन्त:करणके द्वारा तत्त्वकी ओर जानेके लिये है। **पर हम कहते हैं कि इतना सब करनेकी आवश्यकता नहीं, तत्त्वमें अभी-अभी ही स्थिति हो सकती है!** केवल उसको प्राप्त करनेकी चाहना, उत्कण्ठामें कमी है, इसीलिये देर हो रही है। **मैं तत्त्वप्राप्तिमें किसीको अयोग्य नहीं मानता हूँ, केवल उसे प्राप्त करनेकी इच्छामें कमी मानता हूँ।** इच्छामें कमी न हो तो तत्त्वको जान लेगा—पक्की बात है।

तत्त्व तो सदा ज्यों-का-त्यों है। उसे तत्काल जान सकते हैं। केवल उधर दृष्टि नहीं है। इसे ऐसे समझें—हम आँखसे सब पदार्थोंको देखते हैं, पर पदार्थोंसे भी पहले हमें प्रकाश दिखायी देता है। पहले नम्बरमें प्रकाश और दूसरे नम्बरमें सब पदार्थ दीखते हैं। कारण कि प्रकाशके अन्तर्गत ही सब कुछ दीखता है। पर लक्ष्य न होनेसे हमारी दृष्टि पहले प्रकाशपर नहीं जाती—

जो ज्योतियों का ज्योति है, सबसे प्रथम जो भासता।
अव्यय सनातन दिव्य दीपक, सर्व विश्व प्रकाशता॥

वह तत्त्व सबसे पहले दीखता है। उसीके अन्तर्गत सब कुछ है। वही सब करणोंको प्रकाशित करता है। उसीके द्वारा सब जाने जाते हैं। इसलिये

आप लोगोंसे निवेदन है कि आप अपनेमें तत्त्वप्राप्तिकी अयोग्यता न समझें। आपमें एक ही कमी मैं मानता हूँ, वह यह है कि इस तत्त्वको जाननेकी उत्कट अभिलाषा नहीं है।

(१०)

भगवत्प्राप्ति बहुत सुगम है, बहुत सरल है। **संसारमें इतना सुगम काम कोई है ही नहीं, हुआ ही नहीं, होगा ही नहीं, हो सकता ही नहीं!** भगवान्ने कृपा करके अपनी प्राप्तिके लिये ही मानवशरीर दिया है; अतः उनकी प्राप्तिमें सुगमता नहीं होगी तो फिर सुगमता किसमें होगी? भगवत्प्राप्तिके सिवाय मनुष्यका क्या प्रयोजन है? दुःख भोगना हो तो नरकोंमें जाओ, सुख भोगना हो तो स्वर्गमें जाओ और दोनोंसे ऊँचा उठकर असली तत्त्वको प्राप्त करना हो तो मनुष्यशरीरमें आओ। ऐसी विलक्षण स्थिति मनुष्यशरीरमें ही हो सकती है और बहुत जल्दी हो सकती है। इसमें आपको केवल इतना ही काम करना है कि आप इसकी उत्कट अभिलाषा जाग्रत् करो कि हमें तो इसीको लेना है। इतनी जोरदार अभिलाषा जाग्रत् हो कि आपको धन और भोग अपनी तरफ खींच न सकें। सुख-सुविधा, आदर-सम्मान—ये आपको न खींच सकें। जैसे बचपनमें खिलौने बड़े अच्छे लगते थे, पी-पी सीटी बजाना बड़ा अच्छा लगता था, पर अब आप उनसे ऊँचा उठ गये। अब वे अच्छे नहीं लगते। अब मिट्टीका घोड़ा, सीटी आदि अच्छे लगते हैं क्या? क्या मनमें यह बात आती है कि हाथमें झुनझुना ले लें और बजायें? जैसे इनसे ऊँचे उठ गये, इस तरह पदार्थोंसे, भोगोंसे, रुपयोंसे, सुखसे, आरामसे, मानसे, बड़ाईसे, प्रतिष्ठासे, वाह-वाहसे ऊँचे उठ जाओ तो उस तत्त्वकी प्राप्ति स्वतः हो जायगी।

(११)

आप केवल भगवान्की ही इच्छा करो, और कोई इच्छा मत करो। न जीनेकी इच्छा करो, न मरनेकी इच्छा करो। न मानकी इच्छा करो, न बड़ाईकी

इच्छा करो। न भोगोंकी इच्छा करो, न रुपयोंकी इच्छा करो। **केवल एक भगवान्‌की इच्छा करो तो वे मिल जायँगे। कम-से-कम मेरी बातकी परीक्षा तो करके देखो!** भगवान् आपको मिलते नहीं; क्योंकि आप उनको चाहते नहीं। आपके भीतर रुपयोंकी चाहना हो तो भगवान् बीचमें कूदकर क्यों पड़ेंगे? संसारमें सबसे रद्दी वस्तु रुपया है। रुपयोंसे रद्दी चीज दूसरी कोई है ही नहीं। ऐसी रद्दी चीजमें आपका मन अटका हुआ हो तो भगवान् कैसे मिलेंगे?

(१२)

आप पापी हैं या पुण्यात्मा हैं, पढ़े-लिखे हैं या अपढ़ हैं, इस बातको भगवान् नहीं देखते। वे तो केवल आपके हृदयका भाव देखते हैं—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९।३)

वे हृदयकी बातको याद रखते हैं, पहले किये पापोंको याद रखते ही नहीं! भगवान्‌का अन्त:करण ऐसा है, जिसमें आपके पाप छपते ही नहीं! केवल आपकी अनन्य लालसा छपती है। भगवान् कैसे मिलें? कैसे मिलें? ऐसी अनन्य लालसा हो जायगी तो भगवान् जरूर मिलेंगे, इसमें सन्देह नहीं है। **आप और कोई इच्छा न करके, केवल भगवान्‌की इच्छा करके देखो कि वे मिलते हैं कि नहीं मिलते हैं!** आप करके देखो तो मेरी भी परीक्षा हो जायगी कि मैं ठीक कहता हूँ कि नहीं!

(१३)

'मेरा भगवान्‌में ही प्रेम हो जाय' इस एक इच्छाको बढ़ायें। रात-दिन एक ही लगन लग जाय कि मेरा प्रभुमें प्रेम कैसे हो? एक प्रेमके सिवाय और कोई इच्छा न रहे, दर्शनकी इच्छा भी नहीं! इस भगवत्प्रेमकी इच्छामें बड़ी शक्ति है। इस इच्छाको बढ़ायें तो बहुत जल्दी सिद्धि हो जायगी। इस इच्छाको इतना बढ़ायें कि अन्य सब इच्छाएँ गल जायँ। **केवल एक ही लालसा रह जाय**

कि 'मेरा भगवान्‌में प्रेम हो जाय' तो इसकी सिद्धि होनेमें आठ पहर भी नहीं लगेंगे!

(१४)

परमात्माकी प्राप्ति कठिन नहीं है; क्योंकि परमात्मा कहाँ नहीं हैं ? कब नहीं हैं ? किसमें नहीं हैं ?.......केवल उनकी इच्छाकी कमी है, और कुछ कमी नहीं है। केवल एक इच्छा हो जाय कि परमात्मा कैसे मिलें ? वे कैसे हैं—यह देखनेकी जरूरत नहीं है। केवल उनकी आवश्यकताकी कभी विस्मृति न हो। **उनकी एक इच्छा, एक लालसा करनेमें तो समय लगेगा, पर परमात्माकी प्राप्ति होनेमें समय नहीं लगेगा।**

(१५)

जैसे हम प्यासे मर रहे हैं और गंगाजी भी पासमें है, पर हम गंगाजीतक जायँ ही नहीं, उसका जल पीयें ही नहीं तो गंगाजी क्या करे ? ऐसे ही अनेक विलक्षण महात्मा हुए हैं, भगवान्‌के अनेक अवतार हुए हैं, पर हमारी मुक्ति नहीं हुई तो इसका कारण यह था कि हमने चेत नहीं किया। इसलिये अपना उद्धार करनेके लिये आपको चेत करनेकी आवश्यकता है। संसारके पदार्थ प्रारब्धसे मिलते हैं, पर परमात्माकी प्राप्ति नया काम है, जिसको आप कर सकते हैं। यह काम अपने-आप होनेवाला नहीं है, प्रत्युत लगनसे होनेवाला है। **लगन नहीं होगी तो अच्छे महात्मा मिलनेपर भी आप लाभ नहीं ले सकोगे।**

(१६)

लोगोंको परमात्मप्राप्तिमें कठिनता इसलिये मालूम देती है कि भीतरमें असली लगन नहीं है। लगन हो तो परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है। लगन न हो तो परमात्मप्राप्ति बहुत कठिन है। परमात्मप्राप्तिमें प्रारब्ध, उद्योग, बुद्धि, विद्या, योग्यता आदिकी जरूरत नहीं है।........सदाचारी आदमीके भीतर भी अगर लगन नहीं है तो उसको परमात्मा नहीं मिलते। परन्तु दुराचारी आदमीके भीतर

भी लगन लग जाय तो वह परमात्माकी प्राप्ति कर सकता है। बड़े-बड़े चोर, डाकू, कसाईके भीतर भी जब परमात्माकी लगन लग गयी तो वे परमात्माको प्राप्त हो गये। लगन हो तो परमात्मा हरेकको प्राप्त हो सकते हैं। **वे तो मिलनेके लिये तैयार बैठे हैं! लगन नहीं है—इसके सिवाय परमात्मप्राप्तिमें कोई कठिनता नहीं है। लगन हो तो सन्त-महात्मा भी मिल जायँगे, पर लगनके बिना वे मिलते हुए भी काम नहीं आयेंगे।** इसलिये आप सच्ची लगन लगाओ। भगवान्‌से माँगो तो एक लगन ही माँगो। सच्चे हृदयसे भगवान्‌से प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! वह लगन दो, जिससे आप प्रकट हो जाते हो'।

(१७)

अपना कल्याण न गुरुके अधीन है, न सन्तोंके अधीन है और न ईश्वरके अधीन है, यह तो स्वयंके अधीन है—'**उद्धरेदात्मनात्मानम्**' (गीता ६।५) 'अपने द्वारा अपना उद्धार करे'। आप नहीं करोगे तो कल्याण नहीं होगा, नहीं होगा। लाखों गुरु बना लो तो भी कल्याण नहीं होगा। **जब भूख भी खुद रोटी खानेसे ही मिटती है, फिर कल्याण दूसरा कैसे करेगा?** आपकी लगनके बिना भगवान् भी आपका कल्याण नहीं कर सकते, फिर गुरु कर देगा, महात्मा कर देगा—इस ठगाईमें, इस चक्करमें मत आना। इसमें धोखा है, धोखा है! पहले ही फँसे हुए हो, गुरु मिल जाय तो और फँस जाओगे! जब परमात्माके रहते हुए हमारा कल्याण नहीं हुआ तो क्या उनसे भी तेज महात्मा आ जायगा! दयालु, सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ प्रभुके रहते हुए हमारा कल्याण नहीं हुआ, फिर गुरुसे कैसे होगा? क्या भगवान् मर गये या बीमार हो गये या उनकी शक्ति कम हो गयी? आपको खुदको ही लगना पड़ेगा। आप खुद लग जाओ तो गुरु, सन्त-महात्मा, भगवान् आदि सब-के-सब आपके सहायक हो जायँगे। **बच्चेको भूख न हो तो दयालु माँ भी क्या करेगी? आपकी लगनके बिना कौन कल्याण करेगा और कैसे करेगा?**

अनन्त युग बीत गये, फिर भी हमारा कल्याण क्यों नहीं हुआ? क्या

भगवान्‌की दयालुतामें, सर्वज्ञतामें, सर्वसमर्थतामें कोई कमी है? क्या गुरु भगवान्‌से ज्यादा दयालु, सर्वज्ञ औा सर्वसमर्थ है? जैसे अपना पतन आप खुद कर रहे हो, दूसरा नहीं, ऐसे ही अपना उत्थान भी आपको खुद ही करना पड़ेगा, अन्यथा परमात्माके रहते हुए आप दु:ख क्यों पा रहे हो? आपके तैयार हुए बिना कोई कल्याण नहीं कर सकता और आप तैयार हो जाओ तो कोई बाधा नहीं दे सकता।

(१८)

गोरखपुरकी एक घटना है। संवत् २००० से पहलेकी बात है। मैं गोरखपुरमें व्याख्यान देता था। वहाँ सेवारामजी नामके एक सज्जन थे, जो बैंकमें काम करते थे। एक दिन मैंने व्याख्यानमें कह दिया कि अगर आपका दृढ़ विचार हो जाय कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! उन सज्जनको यह बात लग गयी। उन्होंने विचार कर लिया कि हमें तो आज ही भगवान्‌से मिलना है। वे पुष्पमाला, चन्दन आदि ले आये कि भगवान् आयेंगे तो उनको माला पहनाऊँगा, चन्दन चढ़ाऊँगा! वे कमरा बन्द करके भगवान्‌के आनेकी प्रतीक्षामें बैठ गये। समयपर भगवान्‌के आनेकी सम्भावना भी हो गयी और सुगन्ध भी आने लगी, पर भगवान् प्रकट नहीं हुए। दूसरे दिन उन्होंने मेरेसे कहा कि आज आप मेरे घरसे भिक्षा लें। मैं कई घरोंसे भिक्षा लेकर पाता था। उस दिन उनके घर गया तो उन्होंने मेरेसे पूछा कि भगवान् मिलनेवाले थे, सुगन्ध भी आ गयी थी, फिर बाधा क्या लगी कि वे मिले नहीं? मैंने कहा कि भाई! मेरेको इसका क्या पता? परन्तु मैं तुमसे पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे मनमें यह बात आती थी कि इतनी जल्दी भगवान् कैसे मिलेंगे? वे बोले कि यह बात तो आती थी! मैंने कहा कि इसी बातने अटकाया! अगर मनमें यह बात होती कि भगवान् मेरेको अवश्य मिलेंगे, उनको मिलना ही पड़ेगा तो वे जरूर मिलते। भगवान् ऐसे कैसे जल्दी मिलेंगे—ऐसा भाव करके तुमने ही बाधा लगायी है।

अगर आप विचार कर लें कि भगवान् आज मिलेंगे तो वे आज ही मिल जायँगे! परन्तु मनमें यह छाया नहीं आनी चाहिये कि इतनी जल्दी कैसे मिलेंगे? **भगवान् आपके कर्मोंसे अटकते नहीं। अगर आपके दुष्कर्मसे, पापकर्मसे भगवान् अटक जायँ तो वे मिलकर भी क्या निहाल करेंगे?** परन्तु भगवान् किसी कर्मसे अटकते नहीं। ऐसी कोई शक्ति है ही नहीं, जो भगवान्‌को मिलनेसे रोक दे। वे न तो पापकर्मोंसे अटकते हैं, न पुण्यकर्मोंसे अटकते हैं। वे सबके लिये सुलभ हैं। अगर भगवान् हमारे पापोंसे अटक जायँ तो हमारे पाप भगवान्‌से भी प्रबल हुए! अगर पाप प्रबल (बलवान्) हैं तो भगवान् मिलकर भी क्या निहाल करेंगे? जो पापोंसे ही अटक जाय, उसके मिलनेसे क्या लाभ? परन्तु भगवान् इतने निर्बल नहीं हैं, जो पापोंसे अटक जायँ। उनके समान बलवान् कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। **आपकी जोरदार इच्छा हो जाय तो आप कैसे ही हों, भगवान् मिलेंगे, मिलेंगे, मिलेंगे! उनको मिलना पड़ेगा, इसमें सन्देह नहीं है।**

(१९)

आपने जोरसे भजन, जप, तप किया, परन्तु 'भगवान् मिलते हैं कि नहीं मिलते'—यह सन्देह है तो भगवान् नहीं मिलेंगे। 'मैं पापी हूँ, भगवान् नहीं मिलेंगे' तो भगवान् नहीं मिलेंगे। 'मैं अधिकारी नहीं हूँ' तो भगवान् नहीं मिलेंगे। 'मैं कैसा ही हूँ, पर भगवान् मिलने चाहिये' तो भगवान् मिल जायँगे। केवल अपनी चाहना बढ़ाओ।

२. सब काम भगवान्‌के लिये ही करना

(१)

आपके कल्याणकी बड़ी सुगम बात बतायी जाती है। एक बात हर समय याद रखो कि मैं जो भी काम करता हूँ, भगवान्‌का काम करता हूँ। **मैं सब**

काम भगवान्‌का ही करता हूँ—यह बात पक्की कर लो, फिर भगवान् आपसे छिपेंगे नहीं। शौच-स्नान करूँ तो भगवान्‌का काम, कपड़ा धोऊँ तो भगवान्‌का काम, झाड़ू दूँ तो भगवान्‌का काम, सोता हूँ तो भगवान्‌का काम, भोजन करूँ तो भगवान्‌का काम; आठों पहर कोई भी काम करूँ तो भगवान्‌का ही काम करता हूँ। बहनें-माताएँ मान लें कि रसोई बनाती हूँ तो भगवान्‌के लिये बना रही हूँ, बालकोंका पालन करती हूँ तो भगवान्‌का काम करती हूँ, पतिकी तथा सास-ससुरकी सेवा करती हूँ तो भगवान्‌का काम करती हूँ, आदि। इतनी बात पकड़ लो तो सुगमतासे भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी।

(२)

आप चलना-फिरना, उठना-बैठना, सोना-जगना, खाना-पीना आदि जो भी काम करें, भगवान्‌के लिये ही करें तो आपको सुगमतापूर्वक भगवत्प्राप्ति हो जायगी। गीतामें भगवान्‌ने साफ कहा है—

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥
शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
सन्न्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥

(गीता ९। २७-२८)

'हे कुन्तीपुत्र! तू जो कुछ करता है, जो कुछ भोजन करता है, जो कुछ यज्ञ करता है, जो कुछ दान देता है और जो कुछ तप करता है, वह सब मेरे अर्पण कर दे। इस प्रकार मेरे अर्पण करनेसे कर्मबन्धनसे और शुभ (विहित) और अशुभ (निषिद्ध) सम्पूर्ण कर्मोंके फलोंसे तू मुक्त हो जायगा। ऐसे अपने-सहित सब कुछ मेरे अर्पण करनेवाला और सबसे सर्वथा मुक्त हुआ तू मुझे ही प्राप्त हो जायगा।'

पैदल चलें तो एक-एक कदम भगवान्‌के अर्पण करें। यहाँ आयें तो भगवान्‌का काम, जायँ तो भगवान्‌का काम, बैठें तो भगवान्‌का काम, सुनें तो भगवान्‌का काम, सुनायें तो भगवान्‌का काम। हरेक काम प्रसन्नतापूर्वक भगवान्‌के लिये करें तो सब-का-सब भजन हो जायगा। केवल भाव बदलना है। यह संसारमें रहते हुए ही परमात्माको प्राप्त करनेकी युक्ति है। संसारका त्याग करके एकान्तमें रहकर भजन करनेवाले सन्त जिस तत्त्वको प्राप्त करते हैं, उसी तत्त्वको आप गृहस्थमें रहते हुए ही प्राप्त कर सकते हैं। **भगवान्‌का काम करनेवाले संसारमें रहते हुए भी संसारमें नहीं रहते, किन्तु भगवान्‌में रहते हैं।**

३. सब जगह भगवान्‌को देखना

(१)

अगर हम यह मान लें, विश्वास कर लें, स्वीकार कर लें, निश्चय कर लें, धारणा कर लें कि परमात्मा सब जगह हैं तो बहुत सुगमतासे परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी।

(२)

जड़-चेतन, स्थावर-जंगमरूपसे जो कुछ देखने, सुनने, सोचनेमें आ रहा है, वह सब अविनाशी भगवान् ही हैं। इसका अनुभव करनेके लिये साधकको दृढ़तासे यह मान लेना चाहिये कि मेरी समझमें आये या न आये, अनुभवमें आये या न आये, स्वीकार हो या न हो, पर बात यही सच्ची है।.......उसको वृक्ष, नदी, पहाड़, पत्थर, दीवार आदि जो कुछ भी दीखे, उसमें अपने इष्ट भगवान्‌को देखकर वह प्रार्थना करे कि 'हे नाथ! मुझे अपना प्रेम प्रदान करो, हे प्रभो! आपको मेरा नमस्कार हो।' ऐसा करनेसे उसको सब जगह भगवान् दीखने लग जायँगे; क्योंकि वास्तवमें सब कुछ भगवान् ही हैं।

(३)

जो सम्पूर्ण संसारमें समानरूपसे परमात्माको ही देखता है, वह उत्तम भक्त है—

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥

(श्रीमद्भागवत ८। १०। ५५)

उत्तम भक्तकी बातको यदि आरम्भमें ही मान लिया जाय तो कितने लाभकी बात है! पहले आचार्य होकर फिर क-ख-ग सीखना है! सब कुछ भगवान् ही हैं—यह मान लें तो हम आचार्य हो गये! अब नाम-जप करें, कीर्तन करें, सत्संग करें तो बड़ी सुगमतासे भगवत्प्राप्ति हो जायगी।

(४)

अपना कोई एक अत्यन्त प्रिय व्यक्ति मिल जाय तो बड़ा आनन्द आता है। परन्तु जब सब रूपोंमें ही अपने अत्यन्त प्रिय इष्ट भगवान् मिलें तो आनन्दका क्या ठिकाना है! इसलिये सब रूपोंमें अपने प्यारेको देख-देखकर प्रसन्न होते रहें, मस्त होते रहे। कभी भगवान् सौम्य-रूपसे आते हैं, कभी क्रूर-रूपसे आते हैं, कभी ठण्ड-रूपसे आते हैं, कभी गरमी-रूपसे आते हैं, कभी वायु-रूपसे आते हैं, कभी वर्षा-रूपसे आते हैं, कभी बिजली-रूपसे चमकते हैं, कभी मेघ-रूपसे गर्जना करते हैं। तात्पर्य है कि अनेक रूपोंसे भगवान्-ही-भगवान् आते हैं। **जहाँ मन जाय, वहीं भगवान् हैं। अब मनको एकाग्र करनेकी तकलीफ क्यों करें?** मनको खुला छोड़ दें। यह दृढ़ विचार कर लें कि मेरा मन जहाँ भी जाय, भगवान्‌में ही जाता है और मेरे मनमें जो भी आये, भगवान् ही आते हैं; क्योंकि सब कुछ एक भगवान् ही हैं। भगवान् कहते हैं—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति॥

(गीता ६। ३०)

'जो भक्त सबमें मुझे देखता है और मुझमें सबको देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता।'

जैसे सब जगह बर्फ-ही-बर्फ पड़ी हो तो बर्फ कैसे छिपेगी? बर्फके पीछे बर्फ रखनेपर भी बर्फ ही दीखेगी! ऐसे ही जब सब रूपोंमें भगवान् ही हैं, तो फिर वे कैसे छिपें, कहाँ छिपें और किसके पीछे छिपें?

(५)

सब कुछ भगवान् ही हैं—यह बात हमारेको दीखे चाहे न दीखे, हम जानें चाहे न जानें, हमारेको अनुभव हो चाहे न हो, परन्तु यह दृढ़तासे स्वीकार कर लें कि बात वास्तवमें यही सर्वोपरि है। कमी है तो हमारे माननेमें कमी है, वास्तविकतामें कमी नहीं है। जैसे, पहले क-ख-ग आदि अक्षरोंको सीखते हैं, फिर पुस्तकोंमें वे वैसे ही दीखने लग जाते हैं, ऐसे ही पहले केवल इस बातको मान लें कि 'सब कुछ भगवान् ही हैं', फिर वैसा ही अनुभव होने लग जायगा। इसका अनुभव करनेके लिये कुछ करना नहीं है, कहीं आना-जाना नहीं है। भजन-ध्यान, सत्संग-स्वाध्याय आदि जो कर रहे हैं, वे करते रहें। इसके लिये कोई नया साधन नहीं करना है, केवल दृढ़तासे स्वीकार कर लेना है कि सब कुछ परमात्मा ही हैं।

(६)

आप कृपा करके ऐसा मत मानें कि वह परमात्मतत्त्व दूर है। वह आयेगा अथवा हम उसके पास जायँगे, तब उससे मिलन होगा। नहीं तो भजन करते हुए आप तो समझते हैं कि हम भगवान्‌के पास जा रहे हैं, पर वास्तवमें भगवान्‌से अपनेको दूर कर रहे हैं, भगवान्‌से अपने सम्बन्धके अभावको दृढ़ कर रहे हैं! भगवान् तो फिर मिलेंगे, अभी तो नहीं मिलेंगे—ऐसी धारणा रखते हुए राम-राम जपते हैं, कृपा करके इस धारणाको छोड़ दो। हमें अनुभव नहीं हो रहा है—यह बात मानो तो कोई हर्ज नहीं, पर यह बात दृढ़तासे मान लो कि

भगवान् सब जगह मौजूद हैं। 'मैं हूँ'—इसमें भी भगवान् हैं, मनमें भी भगवान् हैं, बुद्धिमें भी भगवान् हैं, वाणीमें भी भगवान् हैं। राम-राम-राम—इस आवाजमें भी भगवान् हैं। देखनेमें, सुननेमें, समझनेमें जो कुछ भी आ रहा है, वह सब भगवान् ही हैं—

मनसा वचसा दृष्ट्या गृह्यतेऽन्यैरपीन्द्रियैः।
अहमेव न मत्तोऽन्यदिति बुध्यध्वमञ्जसा॥

(श्रीमद्भा० ११।१३।२४)

'मनसे, वाणीसे, दृष्टिसे तथा अन्य इन्द्रियोंसे भी जो कुछ ग्रहण किया जाता है, वह सब मैं ही हूँ। मुझसे भिन्न और कुछ नहीं है—यह सिद्धान्त आपलोग तत्त्व-विचारके द्वारा समझ लीजिये।'

(७)

परमात्माके विषयमें द्वैत, अद्वैत, द्वैताद्वैत, विशिष्टाद्वैत आदि अनेक मतभेद हैं, पर 'सब कुछ परमात्मा ही हैं'—यह सर्वोपरि सिद्धान्त है। सम्पूर्ण मत इसके अन्तर्गत आ जाते हैं। साधकोंके मनमें प्राय: यह भाव रहता है कि कोई परमात्माकी सार बात, तात्त्विक बात, बढ़िया बात बता दे तो हम जल्दी परमात्मप्राप्ति कर लें। **वह सार बात, तात्त्विक बात, बढ़िया बात, सबका खास निचोड़, निष्कर्ष यही है कि केवल परमात्मा-ही-परमात्मा हैं।** 'मैं' भी परमात्मा हैं', 'तू' भी परमात्मा हैं' 'यह' भी परमात्मा हैं और 'वह' भी परमात्मा हैं अर्थात् परमात्माके सिवाय कुछ नहीं है।

(८)

खेलमें छिपे हुए बालकको दूसरा बालक देख ले तो वह सामने आ जाता है कि अब तो इसने मुझे देख लिया, अब क्या छिपना! ऐसे ही भगवान् सब जगह छिपे हुए हैं। अगर साधक सब जगह भगवान्‌को देखे तो फिर भगवान् उससे छिपे नहीं रहेंगे, सामने आ जायँगे।

४. भगवन्नामका जप करना

(१)

पारमार्थिक साधनोंमें 'क्रिया' की प्रधानता नहीं है, प्रत्युत 'भाव' और 'ज्ञान' की प्रधानता है। क्रियाकी प्रधानता तो सांसारिक कार्योंमें है। भगवन्नामका जप क्रिया होते हुए भी भावको, ज्ञानको जाग्रत् करनेका विलक्षण साधन है। **नाम-जपमें 'भाव' की प्रधानता है। भावकी कमी रहनेसे नाम-जप करते हुए भी विशेष लाभ नहीं होता।** भावके विषयमें बहुत-सी बातें हैं। पहली बात यह है कि भगवान्‌के साथ अपनापन हो। अपनापन रखकर नाम-जप किया जाय तो उसका भगवान्‌पर असर पड़ता है। एक बालक माँ-माँ पुकारता है। यहाँ बैठी जिन बहनोंके बालक हैं, उन सभीका नाम माँ है, पर उस बालककी पुकार सुनकर वे सब नहीं दौड़तीं। जिसको वह माँ कहता है, वही उठकर दौड़ती है और उसको प्यारसे दुलारकर हृदयसे लगाती है। तात्पर्य है कि माँका होकर माँको पुकारा जाय तो उसका माँपर असर पड़ता है। खेलते समय भी बालक माँ-माँ कहता है। माँ देख लेती है कि वह खेलमें लगा हुआ है; अतः माँ-माँ कहनेपर भी माँपर इतना असर नहीं पड़ता।

नाम-जपकी खास विधि है—भगवान्‌का होकर भगवान्‌का नाम लें। केवल भगवान् ही हमारे हैं और हम भगवान्‌के ही हैं; संसार हमारा नहीं है और हम संसारके नहीं हैं—यह अगर पक्का विचार हो जाय तो तत्काल लाभ होता है। गोस्वामीजी महाराजने कहा है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(दोहावली २२)

अनेक जन्मोंकी बिगड़ी हुई बात आज सुधर जाय और आज भी अभी-अभी, इसी क्षण सुधर जाय। कैसे सुधर जाय? तो कहते हैं कि तू

रामजीका होकर रामजीको पुकार। परन्तु हमारेसे भूल यह होती है कि हम संसारके होकर भगवान्‌को पुकारते हैं। संसारके काम-धन्धोंके कारण वक्त नहीं मिलता, हम तो संसारी आदमी हैं, कलियुगी जीव हैं—इस प्रकार अपने-आपको संसारी और कलियुगी मानोगे तो आपपर संसारका और कलियुगका प्रभाव ज्यादा पड़ेगा; क्योंकि उनके साथ आपने सम्बन्ध जोड़ लिया। बिजलीके तारसे सम्बन्ध जुड़ जाता है तो करेण्ट आ जाता है, ऐसे ही संसार और कलियुगसे सम्बन्ध जोड़ेंगे तो उनका असर जरूर आयेगा। कहते हैं, महाराज! हम तो खाली राम-राम करते हैं, तो ठोस भरा हुआ क्यों नहीं करते भाई? मानो भगवान्‌के नाममें तो खालीपना है और सम्बन्ध हमारा संसार और कलियुगसे है! यह बहुत बड़ी गलती है।

वास्तवमें भगवान् ही हमारे हैं। जब हमने संसारमें जन्म नहीं लिया था, तब भी वे हमारे थे और जब मर जायँगे, तब भी वे हमारे रहेंगे। यह संसार पहले भी हमारा नहीं था, आगे भी हमारा नहीं रहेगा और अभी भी प्रतिक्षण हमारेसे अलग हो रहा है। उम्र भी बीतती चली जा रही है, शरीर भी बीतता चला जा रहा है और कलियुगका समय भी बीतता चला जा रहा है। संसारका सम्बन्ध आपके साथ है ही नहीं। इस बातको आप खयालमें रखें।

कुटुम्बका सम्बन्ध तो 'नदी-नाव-संयोग' की तरह है। नदीके इस पार सब एक साथ नौकापर बैठ जाते हैं और उस पार पहुँचते ही उतर जाते हैं। जबतक नदीसे पार नहीं होते, तभीतक हमारा सम्बन्ध रहता है। ऐसे ही कुटुम्बका सम्बन्ध है, जो आगे रहेगा नहीं, छूट जायगा। यह सच्ची बात है। अगर आप इस बातको मान लें कि 'मैं शरीर-संसारका नहीं हूँ और शरीर-संसार मेरे नहीं हैं, मैं परमात्माका हूँ और परमात्मा मेरे हैं, मैं अपने परमात्माका नाम लेता हूँ' तो भगवान्‌की ताकत नहीं कि वे आपकी तरफ कृपा-दृष्टिसे न देखें!

भगवान्‌के होकर भगवान्‌के नामका जप करो—'*होहि राम को नाम जपु*'। बच्चा माँके साथ जितना अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध रखता है, माँ उतनी ही जल्दी उसके पास आती है। बालक जोरसे रो पड़ता है तो माँ अपनी बड़ी लड़कीको भेजती है कि बेटी! जा, भाईको समझा, राजी कर। वह आकर भाईके हाथमें झुनझुनियाँ देती है, पर वह उसे फेंक देता है। वह लड्डू देती है तो उसे भी फेंक देता है। बहन उसको गोदीमें लेती है तो वह लात मारता है और माँ-माँ करता है। तब माँको उसके पास आना ही पड़ता है। अगर वह झुनझुनियाँसे राजी हो जाय अथवा बहनकी गोदमें चला जाय तो फिर माँ उसके पास नहीं आती। बहनकी गोदमें माँका दूध थोड़े ही है, वह प्यार थोड़े ही है! इस तरह नाम-जप करनेवालेका लोगोंमें आदर होता है कि वाह सा! ये तो भगतजी हैं, भजन करनेवाले हैं! बस, अब झुनझुना बजाओ बैठे! लोग आदर-सम्मान करने लगते हैं, दण्डवत् प्रणाम करते हैं, पूजन करते हैं, प्रशंसा करते हैं कि ये बड़े भारी महात्मा हैं। यह मायारूपी बहन आती है और गोदमें ले लेती है। उसमें राजी हो जाते हो तो फिर भगवान् नहीं आते। नामकी बिक्री करके उसके बदले आदर लेते हो, भेंट-नमस्कार लेते हो, सुख लेते हो तो बताओ, नामका संग्रह कैसे हो?

(२)

'भगवान् हैं'—इतना आप मान लो, भले ही उनका अनुभव अभी न हो। सन्त-महात्मा कहते हैं, वेद-पुराण कहते हैं, बड़े-बड़े जानकार कहते हैं कि 'वह है'। बस 'वह है'—ऐसा मानते हुए लगनपूर्वक राम-राम जप करो तो बहुत जल्दी अनुभव हो जायगा। उसका अनुभव कैसे हो? क्या करूँ? कैसे करूँ? किससे पूछूँ?—यह जिज्ञासा जोरदार हो जाय। राम-नामको छोड़ो मत; क्योंकि इसके सिवाय संसारमें और कोई सहारा नहीं है। मरनेपर भी कहते हैं—'राम-नाम सत्य है'। शरीर-संसार असत्य है। अत: राम-राम करते रहो।

'र' में, 'आ' में, 'म' में, जीभमें, मनमें, स्फुरणामें, चिन्तनमें, बुद्धिमें, मैंपनमें—सब जगह वह परमात्मा परिपूर्ण है। जो सबमें रमण करता है और जिसमें सभी रहते हैं, उसका नाम 'राम' है।

आप यह बात चाहे श्रद्धासे मान लो, चाहे विश्वाससे मान लो, चाहे युक्तिसे मान लो, चाहे अनुभवसे मान लो, चाहे सोच-समझकर मान लो कि परमात्मा सब जगह हैं। जहाँ आप हो, वहीं परमात्मा हैं। आपकी एकता परमात्माके साथ है, बदलनेवाले शरीरके साथ नहीं। शास्त्र भी डंकेकी चोटसे कहता है कि परमात्मा सब जगह हैं, सबमें हैं, सबके अपने हैं, सबके सुहृद् हैं। आप इसको दृढ़तासे मान लो। साधकसे बड़ी भूल यही होती है कि वह 'भजन करेंगे, फिर परमात्मा मिलेंगे'—ऐसा मान लेता है। यह भविष्यकी आशा ही महान् बाधक है। शास्त्रोंसे, सन्तोंके कहनेसे, किसीके कहनेसे यह मान लो कि परमात्मा तो मिले हुए ही हैं, केवल हमें दीखते नहीं। वर्तमानमें परमात्माका अभाव स्वीकार मत करो। अपनेको उनका अनुभव नहीं हो रहा है; अत: अनुभव कैसे हो—इसके लिये रात-दिन राम-राम रटना शुरू कर दो। फिर देखो तमाशा! कितनी जल्दी अनुभव होता है!

जो जिव चाहे मुक्ति को, तो सुमिरीजै राम।
हरिया गैले चालतां, जैसे आवै गाम॥

५. चुप-साधन

(१)

एक सच्चिदानन्दघन परमात्माके सिवाय कुछ भी नहीं है—ऐसा निश्चय करके फिर कुछ भी चिन्तन न करे। परमात्मा स्वत:-स्वाभाविक सद्घन, चिद्घन और आनन्दघन हैं। 'घन' का अर्थ होता है—ठोस। जैसे,

पत्थर या काँच ठोस होता है, इसलिये उसमें सुई नहीं चुभती। परन्तु परमात्मा पत्थर या काँचसे भी ज्यादा ठोस हैं। कारण कि पत्थर या काँचमें तो अग्नि प्रविष्ट हो जाती है, पर परमात्मामें कोई भी वस्तु प्रविष्ट नहीं हो सकती। ऐसे सर्वथा ठोस परमात्माका साधक चिन्तन करता है तो उल्टे उनसे दूर होता है! इसलिये वह जहाँ है, वहीं (निद्रा-आलस्य छोड़कर) बाहर-भीतरसे चुप, शान्त रहनेका स्वभाव बना ले। यह बहुत सुगम और बहुत बढ़िया साधन है। इससे बहुत शान्ति मिलेगी और सब पाप-ताप नष्ट हो जायँगे।

(२)

बाहर-भीतरसे चुप हो जाना 'चुप-साधन' है। भीतरसे ऐसा विचार कर लें कि मेरेको कुछ करना है ही नहीं। न स्वार्थ, न परमार्थ; न लौकिक, न पारलौकिक, कुछ भी नहीं करना है। ऐसा विचार करके बैठ जायँ। बैठनेका बढ़िया समय है—प्रातः नींदसे उठनेके बाद। नींदसे उठते ही भगवान्‌को नमस्कार करके बैठ जायँ। जैसे गाढ़ नींदमें किंचिन्मात्र भी कुछ करनेका संकल्प नहीं था, ऐसे ही जाग्रत्-अवस्थामें किंचिन्मात्र भी कुछ करनेका संकल्प न रहे। चिन्तन, जप, ध्यान आदि कुछ भी नहीं करना है। परन्तु 'चिन्तन आदि नहीं करना है'—यह संकल्प भी नहीं रखना है; क्योंकि 'न करने' का संकल्प रखना भी 'करना' है। वास्तवमें 'न करना' स्वतःसिद्ध है। मन-बुद्धि आदिको स्वीकार करके ही 'करना' होता है।

अब किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं करना है—ऐसा विचार करके चुप हो जायँ। यदि मन न माने तो 'सब जगह एक परमात्मा परिपूर्ण हैं'—ऐसा मानकर चुप हो जायँ। सगुणकी उपासना करते हों तो 'मैं प्रभुके चरणोंमें पड़ा हूँ'—ऐसा मानकर चुप हो जायँ। परन्तु यह दो नम्बरकी बात है। एक नम्बरकी बात तो यह है कि कुछ करना ही नहीं है। इस प्रकार चुप होनेपर भीतरमें कोई संकल्प-विकल्प हो, कोई बात याद आये तो उसकी उपेक्षा करें, विरोध न

करें। उसमें न राजी हों, न नाराज हों; न राग करें, न द्वेष करें। शास्त्रविहित अच्छे संकल्प आयें तो उसमें राजी न हों और शास्त्रनिषिद्ध बुरे संकल्प आयें तो उसमें नाराज न हों। स्वयं भी उन संकल्पोंके साथ न चिपकें अर्थात् उनको अपना न मानें।

आप कहते हैं कि मन बड़ा खराब है, पर वास्तवमें मन अच्छा और खराब होता ही नहीं। अच्छा और खराब स्वयं ही होता है। स्वयं अच्छा होता है तो संकल्प अच्छे होते हैं और स्वयं खराब होता है तो संकल्प खराब होते हैं। अच्छा और खराब—ये दोनों ही प्रकृतिके सम्बन्धसे होते हैं। प्रकृतिके सम्बन्धके बिना न अच्छा होता है और न बुरा होता है। जैसे सुख और दु:ख दो चीज हैं, पर आनन्दमें दो चीज नहीं हैं अर्थात् आनन्दमें न सुख है, न दु:ख है। ऐसे ही प्रकृतिके सम्बन्धसे रहित तत्त्वमें न अच्छा है, न बुरा है। इसलिये अच्छे और बुरेका भेद करके राजी और नाराज न हों।

संकल्प आयें अथवा जायँ, उसमें पहलेसे ही यह विचार कर लें कि वास्तवमें संकल्प आता नहीं है, प्रत्युत जाता है। भूतकालमें हमने जो काम किये हैं, उनकी याद आती है अथवा भविष्यमें कुछ करनेका विचार पकड़ रखा है, उसकी याद आती है कि वहाँ जाना है, वह काम करना है आदि। इस तरह भूत और भविष्यकी याद आती है, जो अभी है ही नहीं। वास्तवमें उसकी याद आ नहीं रही है, प्रत्युत स्वत: जा रही है। मनमें जो बातें जमी हैं, वे निकल रही हैं। अत: आप उससे सम्बन्ध मत जोड़ें, तटस्थ हो जायँ। सम्बन्ध नहीं जोड़नेसे आपको उन संकल्पोंका दोष नहीं लगेगा और वे संकल्प भी अपने-आप नष्ट हो जायँगे; क्योंकि उत्पन्न होनेवाली वस्तु स्वत: नष्ट होती है—यह नियम है।

संसारमें बहुत-से पुण्यकर्म होते हैं, पर क्या हमें उनसे पुण्य होता है? ऐसे ही संसारमें बहुत-से पापकर्म होते हैं, पर क्या हमें उनका पाप लगता है? नहीं लगता। क्यों नहीं लगता? कि हमारा उनसे सम्बन्ध नहीं है। उनके साथ

हमारा सहयोग नहीं है। जैसे संसारमें पुण्य-पाप हो रहे हैं, ऐसे ही मनमें संकल्प-विकल्प हो रहे हैं। हम उनको करते नहीं और करना चाहते भी नहीं। हम उनके साथ चिपक जाते हैं तो उनकी पुण्य और पापकी, अच्छे और बुरेकी संज्ञा हो जाती है, जिससे उनका फल पैदा हो जाता है और वह फल हमें भोगना पड़ता है। इसलिये उनके साथ मिले नहीं। न अनुमोदन करें, न विरोध करें। संकल्प-विकल्प उठते हैं तो उठते रहें। यह करना है और यह नहीं करना है—इन दोनोंको उठा दें। गीतामें आया है—

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन।

(३।१८)

करने और न करने—दोनोंका ही आग्रह न रखें। करनेका आग्रह रखना भी संकल्प है और न करनेका आग्रह रखना भी संकल्प है। करना भी कर्म है और न करना भी कर्म है। करनेमें भी परिश्रम है और न करनेमें भी परिश्रम है। अत: करने और न करने—दोनोंसे किंचिन्मात्र भी कोई मतलब न रखकर चुप हो जायँ तो प्रकृतिका सम्बन्ध छूट जाता है और स्वत: परम विश्राम प्राप्त हो जाता है; क्योंकि क्रियारूपसे प्रकृति ही है। वह क्रिया चाहे शरीरकी हो, चाहे मनकी हो, सब प्रकृतिकी ही है। इस प्रकार बाहर-भीतरसे चुप हो जायँ तो जिसको तत्त्वज्ञान कहते हैं, जीवन्मुक्ति कहते हैं, सहज समाधि कहते हैं, वह स्वत: हो जायगी।

(३)

एक सिद्धान्तकी बात है कि जो सब जगह मौजूद परमात्मा हैं, वे क्रियासे प्राप्त नहीं होते। वे बिना क्रियाके प्राप्त होते हैं। **परमात्मा सब जगह है तो फिर उनको ढूँढ़ोगे कहाँ? जाओगे कहाँ? कोई भी चेष्टा न करे, कुछ भी चिन्तन न करे; जहाँ है, वहीं स्थिर हो जाय तो उसकी प्राप्ति होती है।** क्रियारहित होनेपर परमात्मामें ही स्थिति होती है। अत: जहाँ हैं, वहीं चुप, शान्त हो जायँ—**'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)। परमात्माको

ढूँढ़ोगे तो दूर हो जाओगे; क्योंकि ढूँढ़नेसे वृत्ति दूसरी जगह जायगी।

शान्त होना, कुछ भी चिन्तन न करना एक बहुत बड़ा साधन है। जो पैदा होता है, स्थिरतासे ही पैदा होता है और स्थिरतामें ही उसकी समाप्ति होती है। स्थिरता स्वत:सिद्ध है और क्रिया कृत्रिम है। स्थिरता हरदम रहती है, पर क्रिया हरदम नहीं रहती। इसलिये कुछ भी चिन्तन न करनेसे साधककी परमात्मामें ही स्थिति होती है। चिन्तन करनेसे वह परमात्मासे अलग होता है। कुछ भी चिन्तन न करना परमात्माकी प्राप्तिका बहुत बढ़िया, सर्वोपरि साधन है।

क्रिया करनेसे दो व्यक्तियोंको भी एक समान वस्तुकी प्राप्ति नहीं होती, पर क्रियारहित होनेपर सभीको समान तत्त्वकी प्राप्ति होती है। बोलनेमें दो आदमी भी समान नहीं होते, पर न बोलनेमें सब एक हो जाते हैं। विद्वान्-से-विद्वान् हो अथवा मूर्ख-से-मूर्ख हो, अगर वे कुछ न बोलें, कोई चेष्टा न करें तो उनमें क्या फर्क है? करनेमें दो भी बराबर नहीं होते, पर न करनेमें सब एक हो जाते हैं।

आप कुछ भी चिन्तन न करनेका, शान्त रहनेका स्वभाव बना लें तो परमात्मस्वरूपमें स्थिति स्वत:-स्वाभाविक हो जायगी।

६. भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेना

(१)

भगवान्‌की एक बान (स्वभाव, आदत या प्रकृति) है कि उनको वही भक्त प्यारा लगता है, जिसका दूसरा कोई सहारा नहीं है—

एक बानि करुनानिधान की, सो प्रिय जाकें गति न आन की॥

(मानस, अरण्य० १०।४)

इसलिये—

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

—इस प्रकार अनन्यभावसे केवल भगवान्‌के आश्रित रहे और भजन करे। भजनका भी अभिमान नहीं होना चाहिये कि मैं इतना जप करता हूँ, इतना ध्यान करता हूँ आदि। भक्त जप आदि तो इसलिये करता है कि इनके बिना और करें भी क्या! क्योंकि बढ़िया-से-बढ़िया काम यही है। परन्तु भजनके द्वारा मैं भगवान्‌को प्राप्त कर लूँगा—यह भाव उसमें नहीं होता। उसका यह भाव होता है कि **वास्तवमें भजन भगवान्‌की कृपासे ही हो रहा है और भगवान्‌की प्राप्ति भी उनकी कृपासे ही होगी।** भगवान्‌की कृपाके बिना अन्य कोई सहारा न हो—यह अनन्यभक्ति है। अनन्यभक्तिसे भगवान् सुलभ हो जाते हैं।

(२)

भगवान्‌की प्राप्ति हमारे बलसे नहीं होगी, प्रत्युत भगवान्‌के बलसे, उनकी कृपासे होगी। उनकी कृपासे ही सब काम हुआ है, हो रहा है और होगा। हम अपने जीवनपर दृष्टि डालें कि हमें यह मानवशरीर कैसे मिला? क्या हमने जानकर यहाँ जन्म लिया था? बचपनसे लेकर आजतक हमारा पालन-पोषण कैसे हुआ? गीता, रामायण आदिसे परिचय कैसे हुआ? सत्संग कैसे मिला? अच्छी पुस्तकें कैसे मिलीं? अच्छा संग कैसे मिला? उसके लिये क्या हमने कोई पुरुषार्थ किया था? कोई उद्योग किया था? कुछ बल लगाया था? कुछ रुपये खर्च किये थे? कुछ परिश्रम किया था? सब भगवान्‌की कृपासे ही हुआ है। जब उनकी इतनी कृपा मिली है, तो फिर अब चिन्ता क्यों करें? कोई आदमी किसी ब्राह्मणको भोजनका निमन्त्रण देकर घरपर बुलाये। उसको आसनपर बैठा दे। पत्तल सामने रख दे। जल भी रख दे। अब वह

भोजन देगा कि नहीं—इसकी चिन्ता करनेकी क्या जरूरत? अगर उसका भोजन देनेका मन नहीं होता तो वह निमन्त्रण क्यों देता? पत्तल सामने क्यों रखता? ऐसे ही भगवान्‌ने अपनी कृपासे हमें मनुष्यशरीर दिया है, गीता, रामायण-जैसे ग्रन्थोंसे परिचय कराया है, सत्संगकी बातोंसे परिचय कराया है। हमने उनसे कब कहा था कि आप ऐसा करो? अत: जिसने इतना दिया है, वह आगे भी देगा। नहीं देगा तो लाज किसकी जायगी? द्रौपदी भगवान्‌से कहती है—*'जायगी लाज तिहारी नाथ मेरो कहा बिगड़ैगो'!* इसलिये हम चिन्ता क्यों करें? विश्वास न हो तो भगवान्‌से कहो कि हे नाथ! आप मेरेको विश्वास दो, प्रेम दो; नहीं दोगे तो और कौन देगा? **जैसे माँका दूध माँके लिये नहीं है, प्रत्युत बच्चेके लिये ही है, ऐसे ही भगवान्‌की शक्ति हमारे लिये ही है। हमारा काम तो बस यही है कि हम उनकी शरण हो जायँ।**

(३)

परमात्माकी प्राप्ति ऐसे है, जैसे बालक अपनी माँकी गोदीमें जाय! क्या बालक माँकी गोदीमें अपनी योग्यता, शक्ति, बुद्धिमानीके बलपर जाता है? इसमें केवल माँकी कृपा है। इसी तरह आप यह न मानें कि हम दूजे हैं, भगवान् दूजे हैं। भगवान् हमारी माँ हैं—**'त्वमेव माता च पिता त्वमेव०'**। भगवान्‌के पास जाना अपनी माँके पास जाना है। माँकी गोदीमें जानेके लिये बालकको तैयारी नहीं करनी पड़ती। माँकी गोदीमें जानेमें क्या संकोच? पूत कपूत हो सकता है, पर माता कुमाता नहीं होती—**'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'**। भगवान्‌की प्राप्ति हमारी योग्यतासे नहीं होती। वे अपनी कृपासे ही मिलते हैं। इसलिये अपनी योग्यताका भरोसा नहीं रखें। **हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—यह बात आप दृढ़तासे मान लें और उनकी कृपासे तरफ देखते रहें।** जितने भी सन्त भगवान्‌को प्राप्त हुए हैं, वे सब भगवान्‌की कृपासे ही हुए हैं, चाहे वे मानें या न मानें।

(४)

भगवान्‌की प्राप्ति केवल भगवान्‌की कृपासे ही होती है। वह कृपा तब प्राप्त होती है, जब मनुष्य अपनी सामर्थ्य, समय, समझ, सामग्री आदिको भगवान्‌के सर्वथा अर्पण करके अपनेमें सर्वथा निर्बलता, अयोग्यताका अनुभव करता है अर्थात् अपने बल, योग्यता आदिका किंचिन्मात्र भी अभिमान नहीं करता। इस प्रकार जब वह सर्वथा निर्बल होकर अपने-आपको भगवान्‌के सर्वथा समर्पित करके अनन्यभावसे भगवान्‌को पुकारता है, तब भगवान् तत्काल प्रकट हो जाते हैं।

(५)

अपना उद्धार होगा, कल्याण होगा, परमात्माकी प्राप्ति होगी, जीवन्मुक्ति होगी—यह सब वास्तवमें कृपासे होगा। यह एकदम सच्ची बात है। कृपासे जो काम होता है, वह अपनी चेष्टासे नहीं होता, यह मैंने करके देखा है। इसलिये भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखो। कृपा होगी उत्कण्ठासे। जोरकी प्यास होती है तो पानी मिलता है। कैसे मिलता है? इसका पता नहीं। ऐसे ही हमारी कल्याणकी उत्कण्ठा होती है तो कल्याण होता है। होता है भगवान्‌की कृपासे। कैसे होता है, यह बात भगवान् ही जानते हैं। **आप सब कृपाका आश्रय लें और कृपासे ही हमारा कल्याण होगा—यह विश्वास भीतर बढ़ाएँ।** जितना अधिक विश्वास होगा, उतनी आपको शान्ति मिलेगी। भगवान्‌की कृपापर विश्वास होनेसे शान्ति मिलती है, इसमें सन्देहकी बात नहीं है। सिवाय भगवान्‌की कृपाके कोई बल लगाकर अपना कल्याण कर ले, यह हाथकी बात नहीं है। कृपा कैसे होती है—इसका कुछ पता नहीं! उत्कण्ठा ज्यादा दीखती है, काम नहीं होता! उत्कण्ठा कम दीखती है, काम हो जाता है! इस विषयमें हमारी अक्ल काम नहीं करती! शंकराचार्यजीने लिखा है—'किसीपर कृपा करते समय भगवान् ऐसा विचार नहीं करते कि यह जाति, रूप, धन और आयुसे उत्तम है या अधम? स्तुत्य है या निन्द्य? यह

अन्तरात्मा (श्रीकृष्ण)-रूप महामेघ आन्तरिक भावोंका ही भोक्ता है। मेघ क्या वर्षाके समय इस बातका विचार करता है कि यह खैर है या चम्पा?' (प्रबोधसुधाकर २५२-२५३)। जहाँ जलकी जरूरत नहीं है, वहाँ (समुद्र आदिमें) भी मेघ बरस जाता है! इसलिये आपलोगोंसे प्रार्थना है कि कृपापर विश्वास रखो। ब्रह्माजीके वचन हैं—

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्।
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदधन्नमस्ते जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्॥

(श्रीमद्भागवत १०।१४।८)

'जो मनुष्य प्रतिक्षण आपकी कृपाको ही भलीभाँति देखता रहता है और प्रारब्धके अनुसार जो कुछ सुख-दुःख प्राप्त होता है, उसे निर्विकार मनसे भोग लेता है तथा जो मन, वाणी तथा शरीरसे आपको नमस्कार करता रहता है, वह वैसे ही आपके परमपदका अधिकारी हो जाता है, जैसे अपने पिताकी सम्पत्तिका पुत्र।'

७. भगवान्‌को पुकारना तथा प्रार्थना करना

(१)

वे तो हरदम मिलनेके लिये तैसार हैं! जो उनको चाहता है, उसको वे नहीं मिलेंगे तो फिर किसको मिलेंगे? इसलिये 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' कहते हुए सच्चे हृदयसे उनको पुकारो।

सच्चे हृदयसे प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

भक्त सच्चे हृदयसे प्रार्थना करता है तो भगवान्‌को आना ही पड़ता है। किसीकी ताकत नहीं जो भगवान्‌को रोक दे।

(२)

यद्यपि भीतरमें राग-द्वेष, काम-क्रोध, मोह आदि वृत्तियाँ रहनेके कारण सच्ची प्रार्थना होती नहीं, फिर भी बार-बार प्रार्थना करते रहो। जैसे मोटरको स्टार्ट करते समय बार-बार चाबी घुमाते-घुमाते कभी एक ही चाबीसे मोटर स्टार्ट हो जाती है, ऐसे ही प्रार्थना करते-करते कभी हृदयसे सच्ची प्रार्थना निकलेगी तो एक ही पुकारसे काम हो जायगा।

(३)

भगवान्‌के बड़ी भारी पोल है, पता नहीं है आपको! अब याद कर लो। सच्चे हृदयसे पुकारो **'हे नाथ! हे नाथ!!'** **'ना.....थ'—'थ'** कहते ही वे आ जायँगे!!

(४)

सुबह नींद खुलनेसे लेकर रात्रि नींद आनेतक चार-चार, पाँच-पाँच मिनटके बाद कहते रहो कि **'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'**। भगवान् सुलभतासे प्राप्त हो जायँगे। आप करके देखो। वृत्ति अच्छी हो या बुरी, भगवान्‌को भूलो मत। आप 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!' पुकारो; आपका कल्याण होगा.....होगा.....होगा! नहीं हो तो मेरेको दण्ड देना!

(५)

आपको अबतक भगवान्‌का जैसा स्वरूप समझमें आया है, उसको हर समय याद करो। भगवान् उसीको अपना स्वरूप मान लेते हैं, यह उनका कायदा है। 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!' पुकारो। भगवान् सबके लिये सुलभ हैं। योग्य हों, अयोग्य हों, सदाचारी हों, दुराचारी हों, भले हों, बुरे हों, हरेक भाई-बहन भगवान्‌को अपना कह सकते हैं। **कोई भगवान्‌को पुकारता है तो उसके अवगुणोंकी तरफ भगवान्‌की दृष्टि जाती ही नहीं, वे तो केवल उसकी पुकारको देखते हैं।**

(६)

भगवान्‌के चरणोंकी शरण होकर केवल 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!! कह दो। पाँच मिनटसे ज्यादा देरी न हो। अगर यह भी न कर सको तो दस मिनटमें कह दो। दस मिनटसे ज्यादा हो जाय तो एक समय उपवास करो। नींद आ जाय तो जब जागो, तब कह दो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। मन लगे चाहे न लगे, कहना मत छोड़ो। करके देखो कि लाभ होता है कि नहीं होता! भगवान्‌के सामने की हुई प्रार्थना निरर्थक नहीं जाती।

(७)

'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—इस प्रार्थनामें बड़ा भारी बल है। निरन्तर नामजप करो और थोड़ी-थोड़ी देरमें यह प्रार्थना करते रहो। निहाल हो जाओगे! भगवान्‌को भूलूँ नहीं—यह काम हमारा है, और सब काम भगवान्‌का है। आपको कुछ काम करना नहीं पड़ेगा।

(८)

भगवान्‌की प्राप्ति केवल भगवान्‌की कृपासे ही होती है। वह कृपा तब प्राप्त होती है, जब मनुष्य अपनी सामर्थ्य, समय, समझ, सामग्री आदिको भगवान्‌के सर्वथा अर्पण करके अपनेमें सर्वथा निर्बलता, अयोग्यताका अनुभव करता है अर्थात् अपने बल, योग्यता आदिका किंचिन्मात्र भी अभिमान नहीं करता। इस प्रकार जब वह सर्वथा निर्बल होकर अपने-आपको भगवान्‌के सर्वथा समर्पित करके अनन्यभावसे भगवान्‌को पुकारता है, तब भगवान् तत्काल प्रकट हो जाते हैं।

(९)

जैसे बालक माँको मानता है, ऐसे आप भगवान्‌को मान लो। इससे आपके जीवनमें फर्क पड़ेगा, भीतरसे एक बड़ा सन्तोष होगा, शान्ति मिलेगी।

आप रात-दिन नामजप करो और भगवान्‌से बार-बार कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। पाँच मिनटमें, सात मिनटमें, दस मिनटमें, आधे घण्टेमें, एक घण्टेमें कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। एक घण्टेसे अधिक समय न निकले। निहाल हो जाओगे! इसमें लाभ-ही-लाभ है, हानि है ही नहीं। यह सभीके लिये बहुत बढ़िया चीज है। आपका लोक और परलोक सब सुधर जायगा। भगवान् सुग्रीवसे कहते हैं—

सखा सोच त्यागहु बल मोरें। सब बिधि घटब काज मैं तोरें॥

(मानस, किष्किन्धा० ७।५)

इस तरह भगवान् सब काम करनेको तैयार हैं। आप विचार करके देखो, भगवान्‌ने मनुष्यजन्म दिया है, सत्संग दिया है, सत्संगमें अच्छी-अच्छी बातें दी हैं तो यह हमें उनकी कृपासे मिला है, अपने उद्योगसे नहीं मिला है। इतना काम जिसने किया है, वही आगे भी काम करेगा! हमारे द्वारा प्रार्थना किये बिना, माँगे बिना जब भगवान्‌ने अपने-आप इतना दिया है, तो फिर 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' ऐसी प्रार्थना करनेपर क्या वे हमें छोड़ेंगे? अपने-आप कृपा करेंगे! जरूर कृपा करेंगे!

(१०)

हरदम भगवान्‌से प्रार्थना करते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌के दर्शनके बिना हरदम बेचैनी रहे, कहीं भी मन नहीं लगे, कोई बात सुहाये नहीं। भगवान्‌के सिवाय और कोई बात याद ही नहीं आये। वास्तवमें भगवान् हमारे भीतर हैं। **उनको बार-बार 'हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!' पुकारो और समझो कि भगवान् मेरे भीतर हैं; उनसे मैं कह रहा हूँ और वे सुन रहे हैं, मुझे देख रहे हैं। एक जन्मकी माँ भी पुकारनेसे आ जाती है, फिर भगवान् तो सदाकी माँ हैं! वे जरूर आयेंगे!**

(११)

हरदम 'हे नाथ! हे नाथ!' कहकर भगवान्‌को पुकारो। संसारकी चाहनाको छोड़ना हो तो भगवान्‌को पुकारो। दुर्गुणोंको छोड़ना हो तो भगवान्‌को पुकारो। सद्‌गुणोंको लाना हो तो भगवान्‌को पुकारो। संसारका चिन्तन आ जाय तो भगवान्‌को पुकारो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। जो होगा, भगवान्‌की कृपासे होगा, अपने बलसे नहीं। बच्चेपर आफत आ जाय तो माँको पुकानेके सिवाय वह और क्या करे? **थोड़ा भी संसारका चिन्तन है, आकर्षण है तो रात-दिन भगवान्‌को पुकारो।** संसारके चिन्तनसे रहित होते ही भगवान् अपने-आप मिल जायँगे।

८. भगवान्‌को अपना मानना

(१)

आप भगवान्‌के हो जाओगे तो आपका सब काम भगवान्‌का हो जायगा। आप भगवान्‌के, घर भगवान्‌का, कुटुम्ब भगवान्‌का, वस्तुएँ भगवान्‌की—यह मान लो तो आपका सत्संग करना सफल हो गया! **सब कुछ भगवान्‌का मान लें—इससे सरल उपाय और क्या बताऊँ?**

(२)

आप आज, अभी, इसी समय स्वीकार कर लें कि हम परमात्माके अंश हैं और परमात्मामें ही रहते हैं, तो निहाल हो जायँगे। जड़ शरीर प्रकृतिका अंश है और प्रकृतिमें ही रहता है। जड़ तो सपूत ही रहता है, आप ही कपूत हो जाते हैं। आपकी एकता परमात्माके साथ है, शरीर-संसारके साथ नहीं। आप कितने ही पापी हों तो भी आप परमात्माके साथ हैं। पाप-पुण्य आपका स्पर्श ही नहीं करते। आप परमात्माके हैं और परमात्मा आपके हैं—इसको आप भूल

जायँ तो भी बात वैसी-की-वैसी ही है।........**मैं परमात्माका हूँ—यह चिन्तन करनेकी बात नहीं है, प्रत्युत माननेकी बात है। दो और दो चार ही होते हैं, इसमें चिन्तन करनेकी क्या बात है?**

(३)

हम भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं—इतना स्वीकार कर लो तो हमारा सत्संग सफल हो गया, और आपका काम भी सफल हो गया।

(४)

भगवान्‌को अपना मान लो तो सब काम पूरा हो जायगा, कोई काम किंचिन्मात्र भी बाकी नहीं रहेगा। कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग, भक्तियोग आदि कुछ बाकी नहीं रहेगा, साधक पूर्ण हो जायगा; कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य, प्राप्तप्राप्तव्य हो जायगा। **अनन्त ब्रह्माण्डोंका पालन करनेवाले भगवान् हमारे हैं—यह मान लो तो अब क्या बाकी रहा, कैसे बाकी रहा?**

(५)

भगवान् हमारे हैं, उनके सिवाय कोई हमारा नहीं है—ऐसा मान लो तो आप जीवन्मुक्त, तत्त्वज्ञ, महात्मा हो जाओगे।

(६)

हम भगवान्‌के हैं—यह इतनी बढ़िया बात मिल गयी, अब और क्या चाहिये? अगर हम इस बातको न भूलें कि हम भगवान्‌के हैं तो सब काम ठीक हो जायगा, ***'चेतन अमल सहज सुख रासी'***का अनुभव हो जायगा। हमें साधन करना नहीं पड़ेगा, होने लग जायगा।

(७)

हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—यह मामूली बात नहीं है। यह बहुत ऊँचा भजन है। इसके समान कोई साधन नहीं है। **हम भगवान्‌के हैं,**

भगवान् हमारे हैं—यह पता लग गया तो अब हमारा दूसरा जन्म क्यों होगा ?

(८)

एक भगवान्‌के सिवाय कोई चीज मेरी नहीं—यह मान लो तो निहाल हो जाओगे। इसके समान आनन्दकी, शान्तिकी दूसरी कोई बात है ही नहीं! यह सब शास्त्रोंकी, सन्त-महात्माओंकी सार बात है। नामजप, भजन, कीर्तन आदि कोई साधनकी जरूरत नहीं, मन चाहे वशमें करो या न करो, बस, इतना मान लो कि भगवान्‌के सिवाय कोई चीज हमारी है ही नहीं। भगवान् कैसे हैं, इससे हमें कोई मतलब नहीं। वे जैसे भी हैं, हमारे हैं।

(९)

केवल भगवान् ही मेरे हैं और मैं भगवान्‌का ही हूँ; दूसरा कोई भी मेरा नहीं है और मैं किसीका भी नहीं हूँ—इस प्रकार भगवान्‌में अपनापन करनेसे उनकी प्राप्ति शीघ्र एवं सुगमतासे हो जाती है।

(१०)

'हे प्रभो, मैं आपका हूँ'—इस प्रकार आप भगवान्‌के चरणोंके आश्रित हो जायँ तो सब काम भगवान् करेंगे, भजन भी आपको नहीं करना पड़ेगा।

(११)

एक ऐसी बढ़िया बात है कि आप मान लें तो निहाल हो जायँगे! केवल स्वीकार करना है, और कुछ नहीं करना है। आप पापी-पुण्यात्मा कैसे ही हों, यह मान लें कि हम भगवान्‌के हैं। भगवान् कहते हैं कि जीवमात्र मेरा अंश है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५।७)। **आप भले ही कुछ नहीं हों, सन्त-महात्मा नहीं हों, भजनानन्दी नहीं हों, शुद्ध नहीं हों, पर जीव तो हो ही! कपूत क्या पूत नहीं होता? मल-मूत्रसे भरा बच्चा क्या माँका बेटा नहीं होता?** मूलमें आप निर्दोष हैं, दोष पीछेसे आये हुए हैं। स्नानघरमें जब आप साबुन

लगाते हो तो काँचमें देखनेपर क्या आप मानते हो कि मेरा चेहरा खराब हो गया ?

आप दृढ़ताके साथ भगवान्‌को अपना स्वीकार कर लें तो इसका महान् फल होगा, आपका जीवन सफल हो जायगा! इससे मेरे चित्तमें बहुत प्रसन्नता होगी और आपको भी प्रसन्नता होगी, आनन्द होगा! इस बातको स्वीकार करनेमें लाभ-ही-लाभ है, नुकसान कोई है ही नहीं! यह कोई मामूली बात नहीं है। यह वेदोंका, गीताका, रामायणका भी सार है! आप नहीं मानो तो भी सच्ची बात सच्ची ही रहेगी, कभी झूठी नहीं हो सकती। आप अपनी तरफसे मान लो, फिर आपके माननेमें कोई कमी रहेगी तो उसे भगवान् पूरी करेंगे। पर एक बार स्वीकार करके फिर आप इसे छोड़ना मत। मैं भगवान्‌का हूँ—यह मानते रहो तो आप अपने-आप शुद्ध, निर्मल हो जाओगे। जो लोहेका सोना बना दे, उस पारससे भी क्या भगवान् कमजोर हैं ? भगवान्‌के सम्बन्धसे जैसी शुद्धि होती है, वैसी अपने उद्योगसे नहीं होती। **वर्षोंतक सत्संग करनेसे जो लाभ नहीं होता, वह भगवान्‌को अपना मान लेनेसे एक दिनमें हो जाता है!**

(१२)

अगर आप सुगमतासे भगवत्प्राप्ति चाहते हैं तो मेरी प्रार्थना है कि आप 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह मान लें। यह 'चुप साधन' अथवा 'मूक सत्संग' से भी बढ़िया साधन है! जैसे आपके घरकी कन्या विवाह होनेपर 'मैं ससुरालकी हूँ'—यह मान लेती है, ऐसे आप 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह मान लें। यह सबसे सुगम और सबसे बढ़िया साधन है। इसको भगवान्‌ने सबसे अधिक गोपनीय साधन कहा है—'**सर्वगुह्यतमम्**' (गीता १८। ६४)। गीताभरमें यह '**सर्वगुह्यतमम्**' पद एक ही बार आया है। **मैं हाथ जोड़कर प्रेमसे कहता हूँ कि मेरी जानकारीमें यह सबसे बढ़िया साधन है।**

(१३)

मनुष्योंमें एक धारणा बैठी हुई है कि हम तो संसारी आदमी हैं, परमात्मासे बहुत दूर हैं, और परमात्मा बहुत उद्योग करनेसे तथा समय लगानेसे मिलेंगे। वास्तवमें यह बात नहीं है। हम परमात्माके साक्षात् अंश हैं। परमात्मा हमारे हैं और हम परमात्माके हैं। वे परमात्मा पहलेसे ही सभीको मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ेंगे नहीं। उन परमात्माको अपना मान लें। **परमात्मा हमारे भीतर हैं, वे बाहर दौड़नेसे नहीं मिलते।** पापी-से-पापीके हृदयमें भी परमात्मा हैं और सन्त-महात्मा, तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त, भगवत्प्रेमी भक्तके हृदयमें भी परमात्मा हैं; और वे परमात्मा अपने हैं। वे कभी हमें छोड़ेंगे नहीं। आप कृपा करके उन्हें अपना मान लो तो निहाल हो जाओगे!

(१४)

परमात्मप्राप्ति बहुत सुगम है—यह बात भी आती है, और परमात्मप्राप्ति बहुत कठिन है—यह बात भी आती है। कानून-कायदेके अनुसार देखा जाय तो परमात्मप्राप्ति बहुत कठिन है। परन्तु हृदयका भाव हो तो बहुत सुगमतासे प्राप्ति हो जाय। जैसे बालक कहता है कि मेरी माँ है, ऐसे भगवान् हमारे हैं—ऐसा सीधा-सरल भाव हो जाय। हृदयके भावके बिना प्राप्ति बड़ी कठिन है। भगवान् भावग्राही हैं। बालक मानता है कि मेरी माँ है तो इसमें क्या कानून लगेगा? बच्चेको अपनी योग्यता, पात्रताकी तरफ ध्यान ही नहीं है। वह अपनेपनके बलसे माँपर पूरा कब्जा कर लेता है। इस तरह भगवान् अपने हैं—ऐसा मान लो। बालक रोता है तो माँको सब काम छोड़कर आना पड़ता है। इसलिये साधे-सरल भावसे भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। **भगवान् मेरे हैं—इससे सब बातें पीछे छूट जाती हैं!**

(१५)

भगवान्‌को प्रकट करनेके लिये, उनका प्रेम प्राप्त करनेके लिये भगवान्‌को अपना मानना बहुत जरूरी है। जैसे बालक कहता है कि माँ मेरी है,

ऐसे भगवान् मेरे हैं। **भगवान्में मेरापन प्रेमका मन्त्र है, जिससे भगवान् प्रकट हो जाते हैं।** आपके भीतर यह भाव आना चाहिये कि मेरी माँ मेरेको गोदमें क्यों नहीं लेती ?

(१६)

हमने साधना की है, हमने जप किया है, हमने कीर्तन किया है, हमने अभ्यास किया है, हम गीताको जानते हैं, हम अनेक शास्त्रोंको जानते हैं—ऐसी हेकड़ीसे भगवान् वशमें हो जायँ, यह असम्भव बात है। भगवान् वशमें होते हैं तो कृपा-परवश ही होते हैं। उनकी कृपा उसीपर होती है, जो सर्वथा उनका हो जाता है। वे सस्ते हैं तो इतने सस्ते हैं कि 'हे नाथ! मैं आपका हूँ'—इतना सुनते ही भगवान् कहते हैं कि 'हाँ बेटा! मैं तेरा हूँ'।

(१७)

एकदम सच्ची बात है कि शरीर अपने साथ नहीं रहेगा। जो चीज अपनी नहीं है, वह अपने साथ कैसे रहेगी ? भगवान् अपने हैं, वे अपनेसे दूर कैसे हो जायँगे ? न तो हम भगवान्से दूर हो सकते हैं और न भगवान् ही हमसे दूर हो सकते हैं। शरीर, पदार्थ, रुपये, जमीन, मकान आदि सब-के-सब नाशवान् हैं। ये हमारे साथ नहीं रह सकते और हम इनके साथ नहीं रह सकते। परन्तु भगवान्को हम जानें, चाहे न जानें, उनसे हमारा वियोग हो ही नहीं सकता—यह पक्की बात है। **शरीर चाहे स्थूल हो, चाहे सूक्ष्म हो, चाहे कारण हो, वह सर्वथा प्रकृतिका है और हम अच्छे-मन्दे कैसे ही हों, सर्वथा भगवान्के हैं। अगर यह बात समझमें आ जाय तो हम आज ही जीवन्मुक्त हैं!** कारण कि नाशवान् चीजोंको अपना मानकर ही हम बँधे हैं।

(१८)

केवल यह स्वीकार कर लें कि हम परमात्माके हैं, शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं है तो अभी-अभी मुक्त हो जायँगे! इसमें

पाप-पुण्यका कायदा नहीं है। यह भावना ही उठा दें कि हम पापी हैं। हमारेमें पाप-ताप कुछ नहीं हैं। हम साक्षात् परमात्माके अंश हैं। पाप आगन्तुक हैं और किये हुए हैं, स्वाभाविक नहीं हैं। परन्तु हम स्वाभाविक *'चेतन अमल सहज सुखरासी'* हैं—इतना ही हमें जानना है। पाप पैदा और नष्ट होनेवाली वस्तु है। हम पैदा और नष्ट होनेवाली वस्तु नहीं हैं।

हम सदा परमात्माके साथ हैं और परमात्मा सदा हमारे साथ हैं। हम पापी हैं तो परमात्माके साथ हैं, पुण्यात्मा हैं तो परमात्माके साथ हैं। हम अच्छे हैं तो परमात्माके साथ हैं, मन्दे हैं तो परमात्माके साथ हैं। हमारेमें न पाप है, न पुण्य। न अच्छा है, न मन्दा। अभी हमें अनुभव न हो तो भी हम परमात्माके साथ ही हैं। कितना ही बड़ा पापी हो, रोजाना जानवरोंको काटनेवाला कसाई हो, तो भी है वह परमात्माका अंश ही! हम साक्षात् परमात्माके अंश हैं, पाप-पुण्य हमें छूते ही नहीं, हमतक पहुँचते ही नहीं। इस बातको हम ठीक समझ लें तो इतनेसे मुक्ति हो जायगी।

शरीर तो संसारका है और जन्मता-मरता रहता है, पर हम वही रहते हैं—'**भूतग्रामः स एवायं भूत्वा भूत्वा प्रलीयते**' (गीता ८। १९)। संसारके साथ शरीरकी एकता है, हमारी बिलकुल नहीं। समस्त पाप-ताप शरीरके साथ हैं, हमारे साथ नहीं। हम सम्पूर्ण पाप-पुण्योंसे, शुभ-अशुभ कर्मोंसे अलहदा हैं। बस, इतनी बात मान लें। हम केवल परमात्माके हैं—यह एकदम सच्ची बात है। इसको माननेमात्रसे मुक्ति हो जायगी; क्योंकि मान्यतासे ही बन्धन होता है और मान्यतासे ही मुक्ति होती है।

(१९)

मेरा कुछ नहीं है और भगवान् मेरे हैं—ये दो बातें अगर आप स्वीकार कर लें तो बेड़ा पार है! बहुत जल्दी आपकी आध्यात्मिक उन्नति हो जायगी। अन्य उपायोंकी अपेक्षा यह उपाय बहुत जल्दी सिद्धि करनेवाला है। 'मेरा कुछ नहीं है'—यह होनेपर 'मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह अपने-आप हो

जायगा। मेरी कोई चीज मानते ही 'चाहिये' पैदा हो जायगी। शरीर मेरा है तो रोटी भी चाहिये, कपड़ा भी चाहिये, मकान भी चाहिये, औषध भी चाहिये। 'चाहिये-चाहिये' की लाइन लग जायगी। जब मेरी वस्तु कोई है ही नहीं तो फिर मेरेको क्या चाहिये? मेरा कुछ नहीं है तो फिर मौज हो जायगी!

जो तत्त्वज्ञान चाहते हैं, उनके लिये तो यह बहुत ही सुगम बात है कि अपनी कोई चीज है ही नहीं। मात्र इतना माननेसे कितना ही झंझट मिट जायगा। पढ़ना, सुनना, समझना, श्रवण करना, मनन करना, निदिध्यासन करना, ध्यान करना, समाधि करना, सविकल्प-निर्विकल्प करना, सबीज-निर्बीज करना, सब आफत मिट जायगी!

प्राप्त वस्तुमें ममता न करे और अप्राप्त वस्तुकी इच्छा न करे। मेरा कुछ नहीं है—यह जान लें और भगवान् मेरे हैं—यह मान लें। माननेसे भगवान् माने हुए नहीं रहेंगे, प्रत्युत प्राप्त हो जायँगे। सारा संसार भगवान्‌का है और भगवान् मेरे हैं—इस तरह संसारके साथ भी हमारा सम्बन्ध हुआ, पर बीचमें भगवान् आ गये; अतः संसारका विष नहीं चढ़ेगा, अभिमान नहीं आयेगा। जैसे, तालाबमें डुबकी लगाते हैं तो सैकड़ों मन जल ऊपर आ जाता है, पर भार होता ही नहीं। पर बाहर निकलनेपर एक घड़ा भी उठा लें तो भार हो जाता है। जहाँ ममता की और भार हुआ! ममता नहीं की तो भार नहीं हुआ। ममता न हो तो सब संसार होते हुए भी कोई बाधा नहीं है। मेरा मान लिया तो फँस गये!

हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। इतनी बातसे बहुत जल्दी भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। छोटी-बड़ी सब भूल मिट जायगी; क्योंकि अपनी असली जगह आ गये!

(२०)

उद्धारके लिये मुझे सबसे बढ़िया यह बात मालूम दी कि 'हम भगवान्‌के हैं'। हम भगवान्‌के हैं—ऐसा मान लो तो इसको मैं सबसे बढ़िया

भिक्षा मानता हूँ। आप उम्रभर मुझे भिक्षा दो तो उसमें इतना फायदा नहीं है, जितना इस एक बातको माननेमें है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ'।

९. भगवान्‌को याद करना

(१)

भगवत्स्मरण समस्त साधनोंका सार है। भगवान्‌को याद करते ही सम्पूर्ण अमंगल नष्ट हो जाते हैं। इसमें लाभ-ही-लाभ है, हानि है ही नहीं। सत्संगकी बातोंमें भगवान्‌को याद करना सबसे मार्मिक बात है, सबकी सार बात है। अत: चलते-चलते, उठते-बैठते हर समय भीतरसे भगवान्‌को याद रखो, फिर शरीर चाहे जब छूटे।

(२)

भगवान्‌का स्मरणमात्र करनेसे वे राजी हो जाते हैं। इससे सुगम और क्या साधन होगा!

(३)

भगवान्‌को याद करनेमात्रसे कल्याण हो जाता है, सदाके लिये दु:ख मिट जाता है, महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। इतना सस्ता सौदा और क्या होगा! साधन तो इतना सुगम, पर फल इतना महान्! इतना सुगम काम भी हम न कर सकें तो क्या करेंगे?

(४)

मनुष्यके दो खास काम हैं—भगवान्‌को याद करना और अपनी शक्तिके अनुसार दीन-दुखियोंकी, गरीबोंकी, अरक्षितोंकी, अपाहिजोंकी, अभावग्रस्तोंकी, माता-पिता आदि पूज्यजनोंकी सेवा करना, उनको सुख

पहुँचाना। जितना आप सुखपूर्वक कर सकते हो, उतनी ही आपपर जिम्मेवारी है।

कोई काम करो, कहीं जाओ, भगवान्‌को अवश्य याद कर लो। भगवान्‌को याद करनेमात्रसे मनुष्य संसार-बन्धनसे छूट जाता है—'**यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते........॥**' (महाभारत, अनुशासन० १४९)। भगवान्‌को याद करनेसे उनकी कृपासे सब काम सिद्ध होते हैं। लक्ष्मणजी रामजीको नमस्कार किये बिना मेघनादको मारने गये तो मूर्च्छित हो गये (मानस, लंका० ५२), और रामजीको नमस्कार करके गये तो मेघनादको मार दिया—*'रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरंत अनंत'* (मानस, लंका० ७५)। **भगवान्‌को याद रखनेसे विजय और भूल जानेसे पराजय होती है। इसलिये हरेक काम भगवान्‌को याद करके करो।**

संसारके काममें विजय दीखती है, विजय होती नहीं, पर भगवान्‌के भजनमें सदा विजय ही होती है, पराजय होती ही नहीं। जैसे वृक्षके मूलमें पानी देनेसे पूरे वृक्षको पुष्टि मिलती है और अन्न-जल देनेसे पूरे शरीरको शक्ति मिलती है, ऐसे ही भगवान्‌को याद करनेसे दुनियामात्रको ताकत मिलती है। यह गुप्त बात है, हर कोई बताता नहीं! भगवान्‌को याद करना सब बातोंका सार है।

१०. भगवान्‌की आवश्यकताका अनुभव करना

(१)

जब मनुष्य इस बातको जान लेता है कि इतने बड़े संसारमें, अनन्त ब्रह्माण्डोंमें कोई भी वस्तु अपनी नहीं है, प्रत्युत जिसके एक अंशमें अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, वही अपना है, तब उसके भीतर भगवान्‌की आवश्यकताका अनुभव होता है। कारण कि अपनी वस्तु वही हो सकती है, जो सदा हमारे साथ

रहे और हम सदा उसके साथ रहें। जो कभी हमारेसे अलग न हो और हम कभी उससे अलग न हों। ऐसी वस्तु भगवान् ही हो सकते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब मनुष्यको भगवान्‌की आवश्यकता है, तो फिर भगवान् मिलते क्यों नहीं ? इसका कारण यह है कि मनुष्य भगवान्‌की प्राप्तिके बिना सुख-आरामसे रहता है, वह अपनी आवश्यकताको भूले रहता है। वह मिली हुई वस्तु, योग्यता और सामर्थ्यमें ही सन्तोष कर लेता है। अगर वह भगवान्‌की आवश्यकताका अनुभव करे, उनके बिना चैनसे न रह सके तो भगवान्‌की प्राप्तिमें देरी नहीं है। कारण कि जो नित्यप्राप्त है, उसकी प्राप्तिमें क्या देरी ? **भगवान् कोई वृक्ष तो हैं नहीं कि आज बोयेंगे और वर्षोंके बाद फल मिलेगा!** वे तो सब देशमें, सब समयमें, सब वस्तुओंमें, सब अवस्थाओंमें, सब परिस्थितियोंमें ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं। हम ही उनसे विमुख हुए हैं, वे हमसे कभी विमुख नहीं हुए।

(२)

आपमें केवल भगवत्प्राप्तिकी लालसा हो जाय। वह लालसा ऐसी हो, जिसकी कभी विस्मृति न हो। तात्पर्य है कि **मुझे भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय, तत्त्वज्ञान हो जाय, उनके चरणोंमें मेरा प्रेम हो जाय—इसको केवल याद रखना है, भूलना नहीं है।** हम सब भगवान्‌रूपी कल्पवृक्षकी छायामें बैठे हैं, इसलिये हमारी लालसा अवश्य पूरी होगी; क्योंकि इसीके लिये मनुष्यजन्म मिला है। अगर आपकी सच्ची लगन होगी तो दो-चार दिनमें काम सिद्ध हो जायगा। कितनी सुगम बात है ! इसमें कठिनता क्या है ? इसमें लाभ-ही-लाभ है, हानि कोई है ही नहीं। इससे बढ़िया सुगम उपाय मुझे कहीं मिला नहीं !

केवल एक बात पकड़ लें कि मेरा भगवान्‌में प्रेम हो जाय। इस एक बातमें सब कुछ आ जायगा। इसमें पुरुषार्थ इतना ही है कि इस बातको भूलें नहीं, केवल याद रखें। ऐसा करोगे तो मैं अपनेपर आपकी बड़ी कृपा मानूँगा,

एहसान मानूँगा! **केवल याद रखना है, इतनी ही बात है। ऊँची-से-ऊँची सिद्धि इससे हो जायगी।** सदाके लिये दु:ख मिट जायगा। कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग—ये तीनों योग सिद्ध हो जायँगे। केवल अपनी आवश्यकताको याद रखें, भूलें नहीं। इसके सिद्ध होनेमें कम या ज्यादा दिन लग सकते हैं, पर इसमें कोई अयोग्य नहीं है। यह बात मामूली नहीं है।

(३)

हमारी आवश्यकता परमात्मतत्त्वकी है। **इस आवश्यकताको हम कभी भूलें नहीं, इसको हरदम जाग्रत् रखें।** नींद आ जाय तो आने दें, पर अपनी तरफसे आवश्यकताकी भूली मत होने दें। भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय, उनमें प्रेम हो जाय—इस प्रकार आठ पहर इसको जाग्रत् रखें तो काम पूरा हो जायगा! बीचमें दूसरी इच्छाएँ होती रहेंगी तो ज्यादा समय लग जायगा। दूसरी इच्छा पैदा हो तो जबान हिला दें कि नहीं-नहीं, मेरी कोई इच्छा नहीं! **अगर दूसरी इच्छा न रहे तो आठ पहर भी नहीं लगेंगे!**

११. प्रकीर्ण

(१)

हमें यह जन्म भगवान्‌ने दिया है। कोई यह नहीं कह सकता कि मैंने अपनी मरजीसे जन्म लिया है और मैं इतने वर्ष जीऊँगा। हम भगवान्‌की मरजीसे आये हैं, भगवान्‌की मरजीसे जी रहे हैं और भगवान्‌की मरजीसे जायँगे। इसलिये हम भगवान्‌के हैं। भगवान्‌के भरोसे निश्चिन्त हो जाओ। हम भगवान्‌की मरजीसे बैठे हैं। आज मर जायँ तो कोई दु:ख नहीं, सन्ताप नहीं! भगवान्‌की जैसी मरजी हो, वैसा करें। **तीन बातें मान लें—कोई शुद्ध-सात्त्विक खिलाना चाहे तो खा लें, सुनना चाहे तो सुना दें, मिलना चाहे तो मिल लें। अपना कोई काम नहीं!** केवल इसी बातसे आप निहाल हो जाओगे!

कुछ बाकी नहीं रहेगा! इसमें क्या परिश्रम है, क्या कठिनता है? हमें न खानेकी इच्छा है, न सुनानेकी इच्छा है, न मिलनेकी इच्छा है। अपनी कोई इच्छा नहीं, किसी चीजकी जरूरत नहीं। केवल इतनी बातसे भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी।

(२)

संसारकी आसक्तिके कारण परमात्मप्राप्तिको कठिन मानते हैं, वास्तवमें कठिन है नहीं। **परमात्मप्राप्ति हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है।** हम परमात्माके अंश हैं। नाशवान्‌को सत्ता और महत्ता देकर उसके साथ सम्बन्ध जोड़ लिया, इसीसे बाधा लग रही है। संसारकी जितनी विघ्न-बाधाएँ हैं, वे सब-की-सब नाशवान् हैं; परन्तु हम अविनाशी हैं, परमात्माके अंश हैं। फिर ये विघ्न-बाधाएँ हमारा क्या बिगाड़ सकती हैं? **काम-क्रोधादि जितनी बाधाएँ हैं, सब नाशवान् हैं, अविनाशी नहीं, फिर उनसे क्या डरना?** अविनाशी बाधा कोई है ही नहीं। कोई बाधा ठहरनेवाली है ही नहीं, हो सकती ही नहीं। बाधाएँ आती-जाती हैं, पर हम हरदम रहते हैं—यह सबके अनुभवकी बात है। अविनाशीके सामने विनाशीकी क्या इज्जत है? विनाशीसे डरना, उसको ज्यादा महत्त्व देना ही गलती है। उसको महत्त्व न देकर परमात्माको महत्त्व दें और उन्हें पुकारें तो वे मदद करनेको हरदम तैयार हैं।

(३)

'मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये'—यह बात मान लो तो अप निहाल हो जाओगे! यह बहुत ऊँची और तत्काल शान्ति देनेवाली बात है। विचार करें, जो वस्तु मेरी दीखती है, वह सदा आपके साथ रहेगी क्या? आप सदा उसके साथ रहोगे क्या? इस बातको पकड़ लो तो ममता मिट जायगी। अगर आपको जल्दी तत्त्वका अनुभव करना हो तो यह बहुत बढ़िया उपाय है।

आपने साधन करते इतने वर्ष बिता दिये, अब मेरे कहनेसे दो-तीन

दिन यह करके देख लो कि 'मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये'। **जो लाभ वर्षोंसे नहीं हुआ, वह केवल इस बातको माननेसे हो जायगा कि 'मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये'।** इस बातको माननेसे लाभ ही होगा, नुकसान किंचिन्मात्र भी नहीं होगा। जो चीज दीखे, 'यह मेरी नहीं है'; क्योंकि कोई भी चीज आपके साथ रहनेवाली नहीं है।

चाहे आप यह मान लो कि 'मेरा कुछ नहीं है, मेरेको कुछ नहीं चाहिये', चाहे आप यह मान लो कि 'भगवान् मेरे हैं, मैं भगवान्‌का हूँ'। दोनोंमें आपको जो बढ़िया लगे, वह बात मान लो। चाहे दोनों बातें एक साथ मान लो।

(४)

जबतक निषेध नहीं होता, तबतक विधिकी सिद्धि नहीं होती। मीराबाईने कहा है—*'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'* तो इसमें *'दूसरो न कोई'*—यह निषेध है। इस निषेधसे ऐसी सिद्धि हुई कि उनका शरीर भी चिन्मय होकर भगवान्‌के विग्रहमें लीन हो गया! कारण कि जड़ताकी निवृत्ति होनेपर चिन्मयता ही शेष रहती है। *'मेरे तो गिरधर गोपाल'*—ऐसा तो बहुत-से मनुष्य मानते हैं, पर इससे भगवान्‌की प्राप्ति नहीं हो जाती। अगर इसके साथ *'दूसरो न कोई'*—ऐसा भाव नहीं होगा तो संसारके अन्य सम्बन्धोंकी तरह भगवान्‌का भी एक और नया सम्बन्ध हो जायगा! अगर 'मेरा कोई नहीं है'—इस तरह सर्वथा निषेध हो जाय तो बोध हो जायगा। बोध होते ही नित्यप्राप्तकी प्राप्ति हो जायगी। कारण कि जबतक दूसरी सत्ताकी मान्यता है, तभीतक विवेक है। दूसरी सत्ताकी मान्यता न रहे तो वह तत्त्वबोध ही है।

(५)

सब-के-सब भाई-बहन तीन बातोंका खूब मनन करें—१) हम अपने साथ कुछ लाये नहीं थे, २) हम अपने साथ कुछ नहीं ले जा सकेंगे, और

३) जो चीज मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह अपनी नहीं होती। अगर आप कल्याण चाहते हो तो चलते-फिरते, उठते-बैठते इन तीन बातोंका मनन करो। इससे बहुत लाभ होगा।

(६)

आप एक बात दृढ़तासे पकड़ लें कि हमारी चीज कोई नहीं है। जब कोई चीज हमारी नहीं है तो फिर हमें क्या चाहिये? '**मेरा कुछ नहीं है**'—यह बात समझनेके बाद '**मेरेको कुछ भी नहीं चाहिये**'—यह बात समझमें आ जायगी। यह समझमें आते ही '**मैं कुछ नहीं है**'—यह समझमें आ जायगा और पूर्णता हो जायगी, कुछ बाकी नहीं रहेगा। श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि किसीकी जरूरत नहीं है, केवल इतनेसे काम हो जायगा!

(७)

कोई परमात्माको प्राप्त करना चाहता हो तो उसको सबसे पहले संसारका त्याग करना होगा। त्याग करनेका यह अर्थ नहीं कि साधु होकर चले जायँ। मनमें रुपयोंका और भोगोंका महत्त्व न रहे। रुपयों और भोगोंकी आसक्ति जितनी मिटेगी, उतनी परमात्माकी तरफ उन्नति होगी। **जबतक रुपये और भोग अच्छे लगेंगे, तबतक पारमार्थिक उन्नति नहीं होगी।** चाहे साधु हो, चाहे गृहस्थ हो; चाहे भाई हो, चाहे बहन हो; चाहे ब्राह्मण हो, चाहे क्षत्रिय आदि हो, सबके लिये यह बात है। जिसकी वृत्ति पतनकी तरफ है, वह ऊँचा कैसे जायगा? जिसको रुपये प्यारे लगते हैं, चेला-चेली प्यारे लगते हैं, अपने अनुयायी प्यारे लगते हैं, उसकी पारमार्थिक उन्नति कैसे होगी? यह सम्भव नहीं है।

वास्तवमें रुपये और भोग बाधक नहीं हैं, इनकी इच्छा बाधक है। संसार बाधक नहीं है, संसारका सम्बन्ध, प्रियता, महत्त्व बाधक है। बैंकमें कितने ही रुपये पड़े हों, उनसे हमारा बन्धन नहीं होता। जिन रुपयोंको अपना

मानते हैं, उनसे बन्धन होता है। **रुपयों और भोगोंकी आसक्ति अगर मिट रही है तो साधन ठीक है, अगर नहीं मिट रही है तो साधन शुरू ही नहीं हुआ है!** किया हुआ साधन, सत्संग व्यर्थ तो नहीं जायगा, पर कई जन्मोंमें उद्धार होगा! अगर इसी जन्ममें उद्धार चाहते हो तो इनकी आसक्तिका त्याग करो।

(८)

बहुत-से ऐसे भाई-बहन हैं, जो लक्ष्य बनाये बिना ही जीवन व्यतीत कर रहे हैं। जीवन तो जा रहा है और मौत भी आयेगी ही, इसलिये जीवनका लक्ष्य पहले ही बना लेना चाहिये कि हमें परमात्माको प्राप्त करना है। लक्ष्य बननेपर बहुत फायदा होता है। **अगर लक्ष्य बन गया तो वह खाली नहीं जायगा, कमी रह जायगी तो योगभ्रष्ट हो जाओगे, पर परमात्माकी प्राप्ति जरूर होगी।** लक्ष्य बननेपर फिर समय बर्बाद नहीं होता, सार्थक होता है। वृत्तियाँ स्वाभाविक ठीक हो जाती हैं। अवगुण स्वतः दूर होते हैं। संसारका खिंचाव कम होता है। आस्तिकभाव बढ़ता है। अगर यह फर्क नहीं पड़ा है तो लक्ष्य नहीं बना है, साधन हाथ नहीं लगा है, सत्संग नहीं मिला है।

(९)

वास्तवमें भगवत्प्राप्तिके लिये नया काम कुछ करना ही नहीं है! भगवत्प्राप्तिके लिये समयकी जरूरत नहीं है। हम भगवान्‌के हैं और भगवान्‌का काम करते हैं—यह मान लो। मैं 'पंचामृत' बताया करता हूँ—

१) हम भगवान्‌के ही हैं।

२) हम जहाँ भी रहते हैं, भगवान्‌के ही दरबारमें रहते हैं।

३) हम जो भी शुभ काम करते हैं, भगवान्‌का ही काम करते हैं।

४) शुद्ध-सात्त्विक जो भी पाते हैं, भगवान्‌का ही प्रसाद पाते हैं।

५) भगवान्‌के दिये प्रसादसे भगवान्‌के ही जनोंकी सेवा करते हैं।

—ये पाँच बातें मान लो तो आप बिल्कुल भगवान्‌का नाम मत लो, कल्याण हो जायगा! समयकी जरूरत नहीं है। अपने-आपको बदलनेके बाद समयकी जरूरत नहीं रहती। अपनेको तो संसारी मानते हैं और भगवान्‌का भजन करना चाहते है तो वह पूरा भजन नहीं होता। **समय लगाते हैं तो वह पूरा भजन नहीं होता! अपने-आपको लगा देते हैं तो पूरा भजन होता है।** साधकका पूरा समय ही साधन है। वह चौबीस घण्टे जो कुछ करता है, वह भगवान्‌का ही काम होता है। भगवान् संसारके मालिक हैं तो हमारे भी मालिक भगवान् हुए। अतः उनके लिये ही हम सब काम करते हैं। उपर्युक्त **'पंचामृत' की एक-एक बात कल्याण करनेवाली है।** भावकी जरूरत है, समयकी नहीं। आप भाव बदल दो तो सब समय भगवान्‌का भजन हो जायगा। भाव बदल दो तो दुनिया बदल जायगी—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)! भगवत्प्राप्तिके समान सरल कोई काम है ही नहीं!

(१०)

साधकको ये चार बातें दृढ़तापूर्वक मान लेनी चाहिये—

१) परमात्मा यहाँ हैं।

२) परमात्मा अभी हैं।

३) परमात्मा अपनेमें हैं।

४) परमात्मा अपने हैं।

परमात्मा सब जगह (सर्वव्यापी) होनेसे यहाँ भी हैं; सब समय (तीनों कालोंमें) होनेसे अभी भी हैं; सबमें होनेसे अपनेमें भी हैं; और सबके होनेसे अपने भी हैं।

इस दृष्टिसे—परमात्मा **यहाँ** होनेसे उनको प्राप्त करनेके लिये दूसरी जगह जानेकी आवश्यकता नहीं है; **अभी** होनेसे उनकी प्राप्तिके लिये भविष्यकी प्रतीक्षा करनेकी आवश्यकता नहीं है; **अपनेमें** होनेसे उन्हें बाहर

ढूँढ़नेकी आवश्यकता नहीं है; और **अपने** होनेसे उनके सिवाय किसीको भी अपना माननेकी आवश्यकता नहीं है। अपने होनेसे वे स्वाभाविक ही अत्यन्त प्रिय लगेंगे।

प्रत्येक साधकके लिये उपर्युक्त चारों बातें अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और तत्काल लाभदायक हैं। साधकको ये चारों बातें दृढ़तासे मान लेनी चाहिये। समस्त साधनोंका यह सार साधन है। इसमें किसी योग्यता, अभ्यास, गुण आदिकी भी जरूरत नहीं है। ये बातें स्वत:सिद्ध और वास्तविक हैं, इसलिये इसको माननेके लिये सभी योग्य हैं, सभी पात्र हैं, सभी समर्थ हैं। शर्त यही है कि वे एकमात्र परमात्माको ही चाहते हों।

खोया कहे सो बावरा, पाया कहे सो कूर।
पाया खोया कुछ नहीं, ज्यों-का-त्यों भरपूर॥

× × ×

दौड़ सके तो दौड़ ले, जब लगि तेरी दौड़।
दौड़ थक्या धोखा मिट्या, वस्तु ठौड़-की-ठौड़॥

× × ×

तेरा साहिब है घट मांही, बाहर नैना क्यों खोले।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, साहिब पाया तृण-ओले॥

× × ×

मोको कहाँ ढूँढ़े बंदा, मैं तो तेरे पास में।
ना तीरथ में ना मूरत में, ना एकान्त निवास में।
ना मन्दिर में ना मस्जिद में, ना काबे कैलास में॥ १॥
ना मैं जप में ना मैं तप में, ना मैं वरत उपास में।
ना मैं क्रिया कर्म में रहता, नहीं जोग संन्यास में॥ २॥
नहीं प्रान में नहीं पिंड में, ना ब्रह्माण्ड अकास में।
ना मैं त्रिकुटी भँवर गुफा में, सब साँसों की साँस में॥ ३॥
खोजी होय तुरत मिल जाऊँ, पलभर की तलास में।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, मैं तो हूँ बिस्वास में॥ ४॥

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

आधार-ग्रन्थ-सूची

१. साधक-संजीवनी
२. साधन-सुधा-सिन्धु
३. कल्याणकारी प्रवचन
४. तात्त्विक प्रवचन
५. जिन खोजा तिन पाइया
६. तत्त्वज्ञान कैसे हो ?
७. साधकोंके प्रति
८. नित्ययोगकी प्राप्ति
९. सहज साधना
१०. सब जग ईश्वररूप है
११. जीवनोपयोगी कल्याणमार्ग
१२. स्वाधीन कैसे बनें ?
१३. भगवान् और उनकी भक्ति
१४. साधन और साध्य
१५. सत्संग-मुक्ताहार
१६. सत्यकी खोज
१७. अमृत-बिन्दु
१८. प्रश्नोत्तरमणिमाला
१९. भगवान्‌से अपनापन
२०. मानवमात्रके कल्याणके लिये
२१. सीमाके भीतर असीम प्रकाश
२२. बिन्दुमें सिन्धु
२३. हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं

।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

गीता-प्रकाशनका अमूल्य साहित्य

१. संजीवनी-सुधा

मूल्य : पचास रु. मात्र

यह पुस्तक परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा विरचित 'साधक-संजीवनी' को समझनेकी कुंजी अथवा गाइडबुक है। इसमें 'साधक-संजीवनी' में आयी साधकोपयोगी मार्मिक बातोंका विषयानुसार संकलन तथा अन्तमें 'संजीवनी-कोश' दिया गया है। जिज्ञासु साधकों तथा शोधकर्ताओंके लिये यह पुस्तक विशेष उपयोगी है।
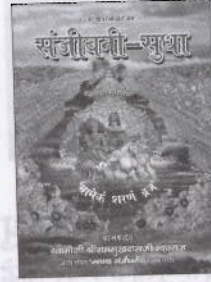
२. सहज गीता

मूल्य : बीस रु. मात्र

यह पुस्तक उन लोगोंके लिये वरदान-स्वरूप है, जो सरल हिन्दी भाषामें गीताके मार्मिक भावोंको समझना चाहते हैं। इस पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा विरचित 'साधक-संजीवनी' के भावोंको सम्मिलित किया गया है। नये पाठकों तथा विद्यार्थियोंके लिये यह बहुत उपयोगी है।

३. हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं

मूल्य : तीन रु. पचास पैसे मात्र

वर्तमान लोगोंके पास न तो इतना समय है और न इतनी सामर्थ्य है कि वे बड़े-बड़े साधन कर सकें। इस छोटी-सी पुस्तिकामें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा बताये गये अत्यन्त सुगम साधन 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' - इस प्रार्थनाका रहस्य तथा उसके महत्त्वका विवेचन किया गया है। इस पुस्तिकाको पाठकोंने इतना पसन्द किया कि थोड़े ही समयमें इसकी लगभग एक लाख प्रतियाँ प्रकाशित हो गयीं। यह पुस्तिका गुजराती भाषामें भी उपलब्ध है।

४. सीमाके भीतर असीम प्रकाश

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज रात-दिन ऐसे उपायोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनके द्वारा प्रत्येक कल्याणकांक्षी मनुष्य शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतासे अपना कल्याण कर सके। इस विषयमें उन्होंने अनेक नवीनतम क्रान्तिकारी उपायोंकी खोज की और उन्हें अपने प्रवचनों
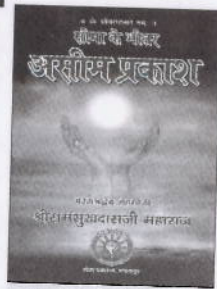
मूल्य : तीस रु. मात्र

तथा पुस्तकोंके माध्यमसे जनतातक पहुँचाया।

इस पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा जुलाई १९९८ से लेकर दिसम्बर १९९९ तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया गया है। इन प्रवचनोंमें श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं।

५. बिन्दुमें सिन्धु

इस पुस्तकमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज द्वारा जनवरी २००० से लेकर मई २००० तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया गया है, जिसमें मानवमात्र के कल्याणकी अत्यन्त सरल युक्तियोंका समावेश हुआ है। इन प्रवचनोंमें श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो बहुत ही उपयोगी हैं।
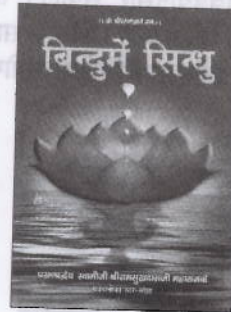
मूल्य : तीस रु. मात्र
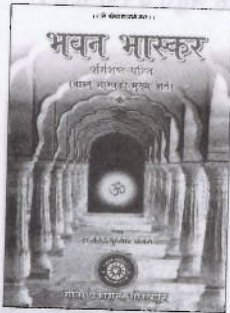
मूल्य : तीस रु. मात्र

६. भवन भास्कर

इस पुस्तकमें पुराणादि विभिन्न प्राचीन शास्त्रोंके आधारपर वास्तुशास्त्रकी प्रमुख बातोंका सुन्दर संग्रह है। इसे पढ़कर व्यक्ति स्वयं ही वास्तुशास्त्रके अनुसार अपने मकानका निर्माण करवा सकता है और वास्तुदोष दूर कर सकता है। परिशिष्टमें परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके द्वारा बतायी हुई वास्तु-सम्बन्धी विविध बातें भी दी गयी हैं।

उपर्युक्त पुस्तकें मँगवानेके इच्छुक सज्जन कृपया निम्न पतेपर सम्पर्क करें -

गीता प्रकाशन, गोरखपुर
गीता-सत्संग-मण्डल,
कसौधन पंचायती मन्दिर (हरिवंश गली), गोरखपुर - २७३००५ (उ.प्र.)
सम्पर्क-सूत्र-093 895 93 845;

E-mail : radhagovind10@gmail.com, pbramhachari@gmail.com
Visit us at : www.gitaprakashan.org